बाल शिक्षा
बाल शिक्षा
स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

॥ ओ३म् ॥

बाल-शिक्षा

लेखक

परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

प्रकाशक

भगवती प्रकाशन न्यास

एच १/२ मॉडल टाउन, दिल्ली-९

प्रकाशक :

भगवती प्रकाशन न्यास
एच १/२, मॉडल टाउन,
दिल्ली-११०००९

संस्करण : द्वितीय, जुलाई १९८५

मूल्य : २.५० रुपये

मुद्रक :

दुर्गा मुद्रणालय,
सुभाषपार्क एक्सटेंशन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

आचार्य धर्मवीर आर्य
आर्य वीर दल मुम्बई

आभार

परम वेदभक्त, नित्य अग्निहोत्रकर्त्ता, पुण्यात्मा

स्वर्गीय श्री रामाप्रसाद जी एवं माता श्रीमती रघुवंशी देवी

की

पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्रों

१. श्री लक्ष्मीप्रसादजी,

२. श्री राधाप्रसादजी

३. श्री गौरीशंकरजी गुप्त

फर्म—**सर्वश्री रामाप्रसाद लक्ष्मीप्रसाद**

पो० गढ़वा (पलामू, बिहार)

द्वारा, प्रदत्त दो सहस्र रुपये की स्थिरनिधि

का उपयोग इस ग्रन्थ के प्रकाशन में किया गया है।

भूमिका

बच्चे देश की निधि और राष्ट्र की मुस्कराहट हैं। बच्चे राष्ट्र की वे कलियाँ हैं जो विकसित होकर फूल बनते हैं और अपने सौरभ से, पराग से, दिव्य-गुणों से, अपने उज्ज्वल चरित्र से, अपने त्याग, तप, सेवा और पुरुषार्थ से सारे राष्ट्र को महकाते हैं।

बालक राष्ट्र की आधारशिला हैं। वे राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी हैं। आज के बालक ही कल के नागरिक हैं। बालकों में से ही लेखक, कवि, वक्ता, धर्मोपदेशक, साहित्यकार, वेद-व्याख्याता और नेता बनते हैं।

बालकों के इस महत्त्व को समझते हुए उनकी शिक्षा और दीक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए। परन्तु खेद का विषय है कि भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर भी हमारी शिक्षा की रीति-नीति में कोई अन्तर नहीं आया। यहाँ अब भी मैकाले की पद्धति कार्य कर रही है। आज जो शिक्षा दी जा रही है उसमें न चरित्र का कोई महत्त्व है, न सदाचार का गौरव है, उसमें न नैतिकता है और न धार्मिकता। आज की शिक्षा-प्रणाली में शिक्षित और दीक्षित बालकों में न देश के प्रति प्रेम है, न परमात्मा के प्रति भक्ति है, न माता-पिता के प्रति श्रद्धा है, न गुरुजनों के प्रति आदर है। आज की शिक्षा केवल परीक्षा पास करने का यन्त्र है और वह भी चाकू और छुरे के जोर पर नकल करके।

यदि बालकों की शिक्षा में धार्मिकता और नैतिकता का पुट होता तो ये बालक आये दिन अपने गुरुओं के समक्ष हड़ताल की ताल न ठोकते, मार्ग में चलते हुए लड़कियों पर आवाजें न कसते, अपने अध्यापकों और प्रिंसिपलों को मौत के घाट न उतारते। आज आवश्यकता है शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन करने की।

भारतीय परम्परा के अनुसार बालक की शिक्षा गर्भ में आने से पूर्व ही आरम्भ हो जाती है। माता-पिता जैसी सन्तान चाहते हैं, अपने-आपको वे उसी साँचे में ढालते हैं। गर्भ में भी माता उसी प्रकार का आहार और विहार करती है। गर्भ से बाहर आने पर माता-पिता बालक को उत्तम शिक्षा करते हैं। बालक की शिक्षा कैसी होनी चाहिए, इस विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं—

'जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े-छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें, जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे।'

आगे वे फिर लिखते हैं—

'जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता-पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे-कैसे वर्त्तना—इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य-पद्य भी अर्थसहित कण्ठस्थ करावें।'

—सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास

हमने महर्षि दयानन्द सरस्वती के कथनानुसार बालकों के लिए उपर्युक्त सभी विषयों पर और इनके अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी मन्त्र, सूत्र, श्लोक आदि संग्रहीत किये हैं। माता-पिता उन्हें स्वयं पढ़ें, कण्ठस्थ करें और बच्चों को भी पढ़ाएँ और कण्ठस्थ कराएँ। विद्यालयों में ऐसी पाठ्य-पुस्तकें लगें जिनमें इस प्रकार की शिक्षा हो। इस शिक्षा से बालक निश्चित रूप से उत्तम नागरिक बनेंगे। उनमें देश-प्रेम की भावनाएँ जाग्रत् होंगी, नैतिकता की भावनाएँ आएँगी, माता, पिता, आचार्यों के लिए श्रद्धा-भक्ति और आदर की भावनाएँ उभरेंगी, इस आशा के साथ सत्यार्थप्रकाश शताब्दी और बालवर्ष १९७९ के अवसर पर यह कृति बालकों के लिए भेंट है।

वेद सदन
एच १/२ मॉडल टाउन,
दिल्ली-९
१७-५-७९

विदुषामनुचरः
जगदीश्वरानन्द

॥ ओ३म् ॥

बाल-शिक्षा

सदाचार का अर्थ

साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः ।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते ॥

—वि० पुरा० ३।११।३

'सत्' शब्द का अर्थ है—साधु और साधु उन महापुरुषों को कहते हैं जो दोषों से रहित, अतएव श्रेष्ठ हैं। ऐसे साधु=सत्पुरुषों, सज्जनों का आचरण सदाचार कहलाता है।

शिष्टाचार का अर्थ

शिष्टों का आचार शिष्टाचार कहलाता है। शिष्ट किसे कहते हैं—

शिष्टाः खलु विगतमत्सरा निरहङ्काराः कुम्भीधान्या
अलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः ॥

—बौधायनधर्म० १।१।५

शिष्ट वे हैं, जो दूसरों के गुणों से द्वेष नहीं करते, जो अहंकार =अभिमान-रहित हैं, जो कुम्भीधान्य (केवल दस दिन के लिए अन्न का संग्रह करनेवाले होते) हैं, जो लोलुपता-रहित हैं, जो दम्भ, दर्प, लोभ, मोह और क्रोध आदि दुर्गुणों से रहित होते हैं।

सदाचार का महत्त्व

सदाचार की महिमा महान् है। एक वाक्य में कहना हो तो—

आचारः परमो धर्मः ॥—मनु० १।१०८

आचार ही परम धर्म है, श्रेष्ठ धर्म है।

सदाचार-पालन से लाभ

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥—मनु० ४।१५६

सदाचार के पालन से मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है, सदाचार के पालन से मनुष्य को श्रेष्ठ सन्तति (पुत्र-पौत्र आदि) प्राप्त होती है। सदाचार के पालन से मनुष्य अक्षय धन-सम्पत्ति प्राप्त करता है। सदाचार ऐसा गुण है जो मनुष्य के समस्त दोषों और दुर्गुणों को नष्ट कर देता है।

दुराचार से हानि

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥—मनु० ४।१५७

दुराचारी (आचारहीन) मनुष्य की समाज में सर्वत्र निन्दा होती है। वह सदा दुःख भोगता है। वह सदा रोगी रहता है और अल्पायु होता है, जल्दी मर जाता है।

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः ॥—वसिष्ठस्मृति ६।३

आचारहीन मनुष्य चाहे सभी वेदों का अध्ययन कर चुका हो, तो भी वह पवित्र और पुण्यात्मा नहीं माना जा सकता।

सदाचारी जीवन के लिए प्रार्थना

परिमाग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज ।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ अनु ॥—यजु० ४।२८

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! आप मुझे दुराचार से हटाकर सदाचार में स्थापित कीजिए जिससे मैं रोग आदि से रहित, उत्कृष्ट दीर्घ जीवन को प्राप्त करूं और विद्वानों के मार्ग का अनुसरण कर सकूं।

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥—ऋ० १।४।६

हे दुर्गुणों और पापों के नाश करनेवाले प्रभो ! हमारा जीवन इतना श्रेष्ठ, महान्, आदर्श एवं दिव्य हो कि हमारे शत्रु भी हमारी प्रशंसा करें और हमें श्रेष्ठ तथा सौभाग्यशाली कहें । हम सदा तुझ परमैश्वर्यशाली परमेश्वर की शरण में ही रहें ।

असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥—बृहदा० १।३।२८

हे ज्ञानस्वरूप, मार्गदर्शक, मेरे आदर्श देव ! आप मुझे असत्य से दूर कर सत्य की ओर प्रेरित कीजिए । आप मुझे अन्धकार से हटाकर प्रकाश की ओर चलाइए । आप मुझे मृत्यु से बचाकर अमृत की ओर बढ़ाइए ।

आदर्श दिनचर्या

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत ।—मनु० ४।९२

ब्राह्ममुहूर्त्त (सूर्योदय से दो घण्टा पूर्व) में जागना चाहिए ।

बुद्ध्वा परमात्मानं स्मरेत् ॥

जागकर (प्रातरग्निम् इत्यादि मन्त्रों से) परमात्मा का स्मरण करना चाहिए ।

मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत् ।
आचार्यमथवाऽप्यन्यं तथायुर्विन्दते महत् ॥

—महा० अनु० १०४।४३

तत्पश्चात् खाट से उठकर सबसे पूर्व माता-पिता को 'नमस्ते' करनी चाहिए । फिर आचार्य और जो कोई भी श्रेष्ठ पुरुष हों उन्हें प्रणाम करना चाहिए । ऐसा करने से मनुष्य की आयु बढ़ती है ।

सुखं व्यायाममभ्यसेत् ॥—शुक्रनी० ३।११२

जो अपने लिए सुखदायक और सुविधाजनक हो ऐसा व्यायाम करना चाहिए ।

विशेष—योगासन सर्वश्रेष्ठ व्यायाम है। घर के कमरे में, छत के ऊपर, पार्क में जहाँ धूल-धूआँ न हो, आसनों का अभ्यास करना चाहिए।

नित्यस्नायी स्यात्।—विष्णुस्मृति अ० ६८

नीरोग और स्वस्थ अवस्था में प्रतिदिन स्नान करना चाहिए।

स्नानस्यानन्तरं सम्यग्वस्त्रेण तनुमार्जनम्॥—स्वस्थपुरुष

स्नान के पश्चात् तौलिये द्वारा रगड़कर शरीर को पोंछ लेना चाहिए।

आचम्य प्रयतो नित्यमुभे सन्ध्ये समाहितः।
शुचौ देशे जपं जप्यमुपासीत यथाविधि॥—मनु० २।२२२

स्नान के पश्चात् आचमन कर और पवित्र होकर प्रतिदिन दोनों समय सावधान हो पवित्र स्थान पर गायत्री-जप करते हुए यथाविधि उपासना करनी चाहिए।

यथोक्तं गुणसम्पन्नं नित्यं सेवेत भोजनम्।
विचार्य देशकालादीन् कालयोरुभयोरपि॥

देश और काल का ध्यान रखते हुए प्रातः-सायं दोनों समय शास्त्रोक्त गुणों से सम्पन्न अर्थात् स्वादिष्ट और स्वास्थ्यप्रद भोजन करना चाहिए।

उष्णमश्नीयात्।—चरक० विमा० १।२४

गर्म भोजन करना चाहिए।

विशेष—गर्म भोजन स्वादिष्ट होता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है और शीघ्र पच जाता है।

स्निग्धमश्नीयात्।—च० वि० १।२४

घी, दूध, दही आदि पदार्थों से युक्त स्निग्ध भोजन करना चाहिए।

विशेष—स्निग्ध भोजन जठराग्नि को प्रदीप्त करता है; शरीर की वृद्धि करता है, इन्द्रियों को दृढ़ करता है; बल बढ़ाता और

सौन्दर्य को निखारता है।

मात्रावदश्नीयात् ।—च० वि० १।२४

मात्रापूर्वक भोजन करना चाहिए।

विशेष—भोजन के सम्बन्ध में वेद में कहा है—

अग्ने तौलस्य प्राशान ।—अथर्व० १।७।२

हे ज्ञानिन् ! तू तोलकर, परिमित भोजन किया कर।

महर्षि मनु (२।५७) लिखते हैं—

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

अधिक भोजन करना आरोग्य=स्वास्थ्य और आयु के लिए अहितकर=हानिकारक है, दुःख देनेवाला है, अधिक खाने में पुण्य भी नहीं है। अधिक खानेवाले की 'यह पेटू है'—ऐसा कहकर लोग भी निन्दा करते हैं, अतः अतिभोजन त्याग देना चाहिए।

पेट की मोटर में भोजन की सवारी कम भरो।
फ़ेल हो जाएगी ठूंसा-ठूंस भर जाने के बाद ॥

जीर्णेऽश्नीयात् ।—च० वि० १।२४

पहला भोजन पच जाने पर ही दुबारा भोजन करना चाहिए।

विशेष—दो भोजनों के बीच में कम-से-कम तीन घण्टे का अन्तर रहना चाहिए। हर समय खाते रहने से खट्टी डकारें, आजीर्ण आदि अनेक रोग हो जाते हैं।

वीर्याविरुद्धमश्नीयात् ॥—च० वि० १।२४

वीर्य के विरुद्ध आहार नहीं लेना चाहिए।

विशेष—परस्पर विरुद्ध-वीर्य जैसे दही और दूध, आम का अचार और खीर, एक साथ नहीं लेने चाहिएँ।

इष्टे देशेऽश्नीयात् ।—च० वि० १।२४

मन को अच्छे लगनेवाले स्थान पर बैठकर भोजन करना चाहिए।

विशेष—सुन्दर, स्वच्छ स्थान पर भोजन करने से मानसिक विकार और मन में ग्लानि नहीं होती।

नातिद्रुतमश्नीयात्।—च० वि० १।२८

बहुत जल्दी-जल्दी भोजन नहीं करना चाहिए।

विशेष—पेट में दाँत नहीं हैं, अतः चबा-चबाकर भोजन करना चाहिए।

नातिविलम्बितमश्नीयात्।—च० वि० १।२८

बहुत धीरे-धीरे भी नहीं खाना चाहिए।

अजल्पन्नहसन् तन्मना भुञ्जीत।—च० वि० १।२८

वार्तालाप न करते हुए, बिना हँसते हुए तन्मय=एकाग्र मन होकर भोजन करना चाहिए।

आत्मानमभिसमीक्ष्य भुञ्जीत सम्यक्।—च० वि० १।२८

अपनी प्रकृति (यह पदार्थ मेरे अनुकूल है और यह प्रतिकूल) और शक्ति को समझकर भोजन करना चाहिए।

निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन् कदाचन।

—महा० अनु० १०४।६०

सदा बैठकर ही भोजन करे, चलते-फिरते कदापि भोजन नहीं करना चाहिए।

न वृथा विसृजेदन्नम्।

बिना प्रयोजन के थाली में व्यर्थ जूठा अन्न नहीं छोड़ना चाहिए।

नैव तिष्ठेन्निरुद्यमः।

(दैनिक नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर अपने नियत कार्यों में लगना चाहिए) कभी भी निरुद्यम=बेकार नहीं रहना चाहिए।

कार्यं बिना यद्उद्याननगराद्युपसर्पणम्।
वृथाटनं तत् शस्तं तु शरीरालस्य शान्तये॥

—श्यैनिकशास्त्र २।२८

बिना विशेष आवश्यकता के, बेकार भी सायंकाल बाग-बगीचे

तथा नगर आदि में भ्रमण करना चाहिए; इससे शरीर का आलस्य नष्ट होता है और शरीर में स्फूर्ति आती है।

न सन्ध्यासु-अभ्यवहाराऽध्ययन-स्वप्नसेवी स्यात्।

सन्ध्या=सूर्यास्त होते समय भोजन, अध्ययन और निद्रा का सेवन नहीं करना चाहिए।

आत्मनिरीक्षणं कृत्वा, ईशं ध्यात्वा प्रक्षालितपादः शयनं कुर्यात्॥

आत्म-निरीक्षण (दिनभर के कार्यों पर दृष्टिपात) करके, परमात्मा का ध्यान धरके तथा पैर धोकर सोना चाहिए।

आदर्श आचार-व्यवहार

पूर्वाभिभाषी, सुमुखः, होता, यष्ठा, दाता, अतिथीनां पूजकः, काले हितमितमधुरार्थवादी, वश्यात्मा, धर्मात्मा, हेतावीर्ष्यु, फले नेर्ष्युः, निश्चिन्तः, निर्भीकः, ह्रीमान्, धीमान्, महोत्साहः, दक्षः, क्षमावान्, धार्मिकः, आस्तिकः, मङ्गलाचारशीलः॥

—चरक० सूत्र० ८।१८

मनुष्य को चाहिए कि यदि अपने पास कोई मिलने के लिए आये तो उससे स्वयं ही पहले बोले। वह सदा प्रसन्न-मुख, हँसता और मुस्कराता हुआ रहे। प्रतिदिन हवन और यज्ञ करनेवाला हो। मनुष्य को अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान देना चाहिए, अतिथियों का आदर-सत्कार करना चाहिए। समय पर हितकर, थोड़े और मधुर अर्थवाले वचनों को बोलना चाहिए। दूसरे की उन्नति के कारणों में ईर्ष्या करनी चाहिए, परन्तु उसके फल में ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए। चिन्ताओं से मुक्त रहना चाहिए। निडर होना चाहिए। निन्दनीय कामों को करने में लज्जाशील होना चाहिए। बुद्धिमान्, अत्यधिक उत्साही और प्रत्येक कार्य में चतुर होना चाहिए। क्षमाशील, धार्मिक और आस्तिक (ईश्वर, वेद और पुनर्जन्म में विश्वास रखनेवाला) होना चाहिए। इस प्रकार मनुष्य को मङ्गल-आचार से युक्त होना चाहिए।

सर्वप्राणिषु बन्धुभूतः स्यात्, क्रुद्धानामनुनेता, भीतानामाश्वासयिता, दीनानामभ्युपपत्ता, सत्यसन्धः, सामप्रधानः, परपरुषवचनसहिष्णुः, अमर्षघ्नः, प्रशमगुणदर्शी, रागद्वेषहेतूनां हन्ता च ॥

—चरक० सूत्र० ८।१८

मनुष्य को सब प्राणियों के साथ भाई के समान व्यवहार करनेवाला होना चाहिए, क्रुद्ध मनुष्यों को अनुनय-विनय से प्रसन्न करनेवाला होना चाहिए, भयभीत=डरे हुए मनुष्यों को आश्वासन =ढाढस, तसल्ली देनेवाला होना चाहिए, दीन-दुःखियों का सहायक होना चाहिए, सत्यप्रतिज्ञ होना चाहिए,[1] साम, दान, दण्ड और भेद —इन चारों उपायों में से साम का ही प्रधान रूप से आलम्बन लेनेवाला होना अर्थात् सदा शान्त रहना चाहिए, दूसरों के कठोर वचनों को सहनेवाला होना चाहिए, अमर्ष=क्रोध का नाशक होना चाहिए, शान्ति को गुण की दृष्टि से देखनेवाला होना चाहिए, राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाले कारणों का त्याग करनेवाला होना चाहिए।

सत्त्वसम्पन्नो, वृद्धदर्शी, सत्यवाक्, अविसंवादकः, कृतज्ञः, स्थूललक्षः, अदीर्घसूत्रः, दृढबुद्धिः, विनयकामः, इत्याभिगामिका गुणाः ॥

—कौटिल्य अर्थ० ६।१।३

मनुष्य को आत्मिक बल से सम्पन्न होना चाहिए, (वयः= अवस्था, ज्ञान और अनुभव में) वृद्ध पुरुषों का उपासक होना चाहिए,

१. इस विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं—

"जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करनेवाले की होती है, वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिए अर्थात् जैसे किसी ने किसी से कहा कि—"मैं तुमको या तुम मुझसे अमुक समय में मिलूंगा वा मिलना, अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुमको मैं दूंगा, इसको वैसी ही पूरी करे, नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा। इसलिए सदा सत्यभाषण और सत्य-प्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिए।"

—सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास

सत्यवादी होना चाहिए, वचन और आचरण में एकता रखनी चाहिए, कृतज्ञ (किये हुए उपकार को माननेवाला) होना चाहिएँ, अपना लक्ष्य सदा ऊँचा और महान् रखना चाहिए, दीर्घसूत्री नहीं होना चाहिए, सब काम यथासम्भव शीघ्रता से करने चाहिएँ, अपनी बुद्धि को दृढ़ रखना चाहिए, ढुल-मुल नहीं, शास्त्रमर्यादा का पालन करनेवाला होना चाहिए—ये आभिगामिक गुण हैं, इन गुणों के कारण मनुष्य के पास जाने की इच्छा होती है।

वाग्मी, प्रगल्भः, स्मृति-मति-बलवान्, उदग्रः, स्ववग्रहः, दीर्घदूर-दर्शी, पैशुन्यहीन इत्यात्मसम्पत् ॥ —कोटि० ६।१।६

मनुष्य को वाग्मी (अर्थपूर्ण भाषण करने में समर्थ, उत्तम वक्ता=बोलनेवाला) होना चाहिए, बोलने में निर्भीक और प्रौढ़ होना चाहिए, स्मरणशील (बात को याद रखनेवाला), मतिमान् और बलवान् होना चाहिए, वीर, पराक्रमी और साहसी होना चाहिए, नमनशील स्वभाव का होना चाहिए, हठी एवं कठोर स्वभाव का नहीं, शिल्प और कला में कुशल होना चाहिए, दीर्घ-दर्शी और दूरदर्शी होना चाहिए, पिशुनता=चुगली नहीं करनी चाहिए, यह मनुष्य की आत्मसम्पत्ति है।

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥

—महा० शा० २५९।२२

अपने लिए जिन-जिन बातों की इच्छा हो, उनकी दूसरों के लिए भी इच्छा करनी चाहिए।

न तत्परस्य सन्दध्यात्प्रतिकूलं यदात्मनः ।

—महा० उद्योग ३८।७१

जो बात अपने लिए प्रतिकूल जान पड़े, वह दूसरों के प्रति भी नहीं करनी चाहिए।

आभाषितश्च मधुरं प्रत्याभाषेत मानवान् ।

—महा० शा० ६७।३८

यदि कोई वार्तालाप करे तो उससे मीठा और मधुर बोलना चाहिए।

ईक्षितः प्रतिवीक्षेत मृदु वल्गु च सुष्ठु च।

—महा० शा० ६७।३९

यदि कोई अपनी ओर देखे तो उसकी ओर मृदु, मधुर एवं सौजन्यपूर्ण दृष्टि से देखना चाहिए।

उत्तम स्वभाव अपना औरों का दिल रिझाए।
वह देखते ही कह दे तुम प्यार के लिए हो॥

आपद्युन्मार्गगमने कार्यकालात्ययेषु च।
अपृष्टोऽपि हितान्वेषी ब्रूयात्कल्याणभाषितम्॥

—शुक्र० २।२२३

यदि किसी पर आपत्ति आ जाए, यदि कोई बुरे मार्ग पर चलने लगे तथा किसी का काम करने का समय बीत रहा हो तो बिना पूछे भी हितैषी पुरुष को उसके लिए हितकारी बात बता देनी चाहिए।

कुर्यात् प्रियमयाचितः।—महा० शा० ९३।९

बिना किसी के प्रार्थना या याचना किये ही दूसरों का प्रिय करना चाहिए।

प्रसादयेन्मधुरया वाचा वाप्यथ कर्मणा।
तवास्मीति वदेन्नित्यं परेषां कीर्तयन् गुणान्॥

—महा० शा० १२३।२३

मनुष्य को चाहिए कि मीठी वाणी और उत्तम व्यवहार के द्वारा सबको प्रसन्न रखे, दूसरों के गुणों का वर्णन करते हुए सबसे यही कहे—"मैं आपका ही हूँ, आप मुझे अपना ही समझें।"

कृतज्ञेन सदा भाव्यं मित्रकामेन चैव ह।—महा० शा० १७३।२२

सदा कृतज्ञ होना चाहिए और सदा नये-नये मित्र बनाने की इच्छा करनी चाहिए।

वर्जनीय व्यवहार

न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो भवेत् ।
न चाङ्गचपलो विप्र इति शिष्टस्य गोचरः ॥

—वसिष्ठस्मृ० ६।३८

मननशील मनुष्य को बैठे-बैठे व्यर्थ ही हाथ-पैर हिलाना, आँखें मटकाना, वाणी से कुछ-न-कुछ बकते रहना, बिना कारण अट्टहास (जोर-जोर से हँसना) करना, अकारण शरीर को लचकाना आदि चपलता-चञ्चलता की चेष्टाएँ नहीं करनी चाहिएँ, यही सज्जनों का शिष्टाचार है ।

छेदनभेदनविलेखनविमर्दनावस्फोटनानि नाकस्मात्कुर्यात् ॥

—गौतमधर्म० १।९।५१

तृण आदि का छेदन, घड़े आदि का भेदन, दीवाल या भूमि पर नख (नाखून) आदि से लिखना, ढेले आदि फोड़ना, अंगुली चटकाना—ये सब कार्य अकारण न करें ।

लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः ।
नित्योच्छिष्टः संकुसुको नेहायुर्विन्दते महत् ॥

—महा० अनु० १०४।१५

व्यर्थ ही मिट्टी के ढेले फोड़नेवाला, दाँतों से नाखून चबानेवाला, सदा जूठे मुख रहनेवाला, ऐसे कुलक्षणयुक्त कुसंस्कारी मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त नहीं होती ।

उदक्शिरा न स्वपेत तथा प्रत्यक्शिरा न च ।
प्राक्शिरस्तु स्वपेद्विद्वानथवा दक्षिणाशिराः ॥

—महा० अनु० १०४।४८

उत्तर और पश्चिम की ओर सिर करके न सोये । विद्वान् मनुष्य को पूर्व या दक्षिण की ओर सिर करके ही सोना चाहिए ।

नानृतं ब्रूयात् ।—चरक० सूत्र० ८।१९

असत्य नहीं बोलना चाहिए ।

विशेष—सत्य की प्रशंसा में महाभारत शान्तिपर्व १६२।२४ में कहा है—

नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, और असत्य से बढ़कर कोई पातक=पाप नहीं है। और भी कहा है—

सत्यं स्वर्गस्य सोपानम् ।—महा० शा० २९९।३१

सत्य स्वर्ग की सीढ़ी है।

नान्यस्वमाददीत् ।—च० सूत्र० ८।१९

दूसरों का धन नहीं हड़पना चाहिए।

विशेष—वेद में कहा है—

मा गृधः ।—यजु० ४०।१

लालच मत करो।

नान्यस्त्रियमभिलषेन्नान्यश्रियम् ।—च० सू० ८।१९

दूसरे की स्त्री और दूसरे की श्री=धन-सम्पत्ति का लालच नहीं करना चाहिए।

न वैरं रोचयेत् ।—च० सू० ८।१९

वैर-विरोध में रुचि नहीं लेनी चाहिए।

न कुर्यात्पापम् ।—च० सू० ८।१९

शारीरिक, वाचिक (वाणी का) और मानसिक पाप नहीं करना चाहिए।

विशेष—शरीर के पाप हैं—चोरी, जारी (व्यभिचार) और हिंसा। वाणी के पाप हैं—कटु बोलना, झूठ बोलना, चुगली करना और व्यर्थ की बातें करना। मन के पाप हैं—दूसरे के धन को लेने की इच्छा करना, मन से दूसरों की हानि की बात सोचना और नास्तिक-बुद्धि (वेद, आत्मा, परमात्मा, परलोक कुछ नहीं) रखना।

न पापेऽपि पापी स्यात् ।—च० सू० ८।१९

पापी के प्रति भी पाप का आचरण नहीं करना चाहिए।

नान्यदोषान्ब्रूयात् ।—च० सू० ८।१९

दूसरों के दोषों को नहीं कहना चाहिए ।

नान्यरहस्यमागमयेत् ।—च० सू० ८।१९

दूसरों की गुप्त बातों को जानने का यत्न नहीं करना चाहिए ।

न भयमुत्पादयेत् ।—च० सू० ८।१९

किसी को भयभीत नहीं करना चाहिए ।

कलिं नारभेत् ।—च० सू० ८।१९

किसी के साथ लड़ाई-झगड़ा नहीं करना चाहिए ।

न सतो न गुरून् परिवदेत् ।—च० सू० ८।२३

सज्जनों और गुरुजनों की निन्दा नहीं करनी चाहिए ।

नातिसमयं जह्यात् ।—च० सू० ८।२५

आपस की सन्धि अथवा समझौते को नहीं तोड़ना चाहिए ।

न नियमं भिन्द्यात् ।—च० सू० ८।२५

स्वयं के अथवा किसी संस्था के नियमों को नहीं तोड़ना चाहिए ।

न मद्य-द्यूत-वेश्या-प्रसङ्गरुचिः स्यात् ।—च० सू० ८।२५

मदिरा=शराब पीने, जुआ खेलने और वेश्यागमन की इच्छा नहीं रखनी चाहिए ।

न कञ्चिदवजानीयात् ।—च० सू० ८।२५

किसी का अपमान नहीं करना चाहिए ।

नाहंमानी स्यात् ।—च० सू० ८।२५

अभिमानी नहीं होना चाहिए ।

नेन्द्रियवशगः स्यात् ।—च० सू० ८।२७

इन्द्रियों के वश में नहीं होना चाहिए । इन्द्रियों को अपने वश में करके जितेन्द्रिय बनना चाहिए ।

न चञ्चलं मनोऽनुभ्रामयेत् ।—च० सू० ८।२७

चञ्चल मन को स्वच्छन्दता-(स्वतन्त्रता)-पूर्वक विषयों में नहीं

घुमाना चाहिए।

न सिद्धावुत्सेकं गच्छेन्नासिद्धौ दैन्यम्।—च० सू० ८।२७

किसी कार्य के सिद्ध होने पर अत्यधिक हर्षित नहीं होना चाहिए और काम के बिगड़ जाने पर दुःखी नहीं होना चाहिए।

न वीर्यं जह्यात्।—च० सू० ८।२७

बल एवं साहस का परित्याग नहीं करना चाहिए। हिम्मत हारकर नहीं बैठना चाहिए।

सत्यान्न प्रमदितव्यम्।—तैत्ति० उप० शि० ११।१

सत्य बोलने में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

धर्मान्न प्रमदितव्यम्।—तैत्ति० उप० शि० ११।१

धर्माचरण करने में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम्।
अपत्रपेत वा येन न तत्कुर्यात् कथञ्चन॥

—महा० शा० १२४।६७

अपना जो भी कर्म या पुरुषार्थ दूसरों के लिए हितकर न हो अथवा जिस काम को करके समाज में लज्जित होना पड़े, वह काम कभी नहीं करना चाहिए।

शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह।—मनु० ४।१३९

किसी के साथ निरर्थक वैर-विरोध अथवा लड़ाई-झगड़ा नहीं करना चाहिए।

न बलस्थोऽहमस्मीति नृशंसानि समाचरेत्।

—महा० शा० १३३।१९

"मैं बलवान् हूँ, मैं ऊँचे अधिकार पर स्थित हूँ, मेरा काई क्या बिगाड़ सकता है," ऐसा समझकर किसी के प्रति अन्याय और अत्याचार नहीं करना चाहिए।

परेषां यदसूयेत न तत्कुर्यात्स्वयं नरः।

—महा० शा० २९०।२४

मनुष्य को दूसरों की जो बातें अप्रिय एवं अनुचित लगें, उन्हें स्वयं भी नहीं करना चाहिए ।

न सीदन्नपि धर्मेण मनोऽधर्मे निवेशयेत् ।—मनु० ४।१७१

धर्माचरण से कष्ट पाने पर भी मन को अधर्म में नहीं लगाना चाहिए ।

नारुन्तुदः स्यादार्तोऽपि न परद्रोहकर्मधीः ।
ययाऽस्योद्विजते वाचा नाऽलोक्यां तामुदीरयेत् ॥

—मनु० २।१६१

स्वयं दुःखी होते हुए भी दूसरे किसी को दुःख न दे । मर्मभेदी वचन न बोले, दूसरे का अपकार करने का विचार न करे । आचरण और बुद्धि किसी के द्वारा भी दूसरों से द्रोह न करे । जिस वाणी को सुनकर लोग उद्विग्न हो उठें, ऐसी लोकविरोधिनी वाणी न बोले ।

सभ्यता-शिष्टता

नोच्चैर्हसेत् ।—च० सू० ८।१९

बहुत जोर से नहीं हँसना चाहिए ।

न नासिकां कुष्णीयात् ।—च० सू० ८।१९

अंगुली से नासिका को नहीं कुरेदना चाहिए ।

न दन्तान् विघट्टयेत् ।—च० सू० ८।१९

दाँतों को नहीं किटकिटाना चाहिए ।

न क्षिप्तपादजंघश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ।—मार्कण्डेय० ३४।४४

बुद्धिमान् को चाहिए कि पैर तथा जाँघ फैलाकर न बैठे ।

स्नायीत न नरो नग्नो न शयीत कदाचन ।—मार्क० ३४।३४

नग्न होकर स्नान तथा शयन नहीं करना चाहिए ।

संलापं नैव शृणुयाद् गुप्तः कस्यापि सर्वदा ।—शुक्रनी० ३।१६४

किसी की बातचीत को छिपकर नहीं सुनना चाहिए ।

मार्गं निरुध्य न स्थेयम् ।—शुक्रनी० ३।२९९

मार्ग को रोककर खड़ा होना या बैठना नहीं चाहिए।

न पथि मूत्रपुरीषं शिलां च समुत्सृजेत् ।

मार्ग में पेशाब, पाखाना तथा कंकर-पत्थर नहीं फेंकना चाहिए।

सर्वत्र तु प्रत्युत्थायाभिवादनम् ।—आप० धर्म० १।१४।१६

किसी भी श्रेष्ठ पुरुष को प्रणाम करना हो तो खड़े होकर प्रणाम करना चाहिए, बैठे-बैठे नहीं।

पूज्यैः सह नाधिरुह्य वदेत् ।—नीतिवाक्यामृत १७।२७

पूज्यों के साथ बढ़-चढ़कर बातें नहीं करनी चाहिएँ।

नाश्लीलं कीर्तयेत् ।—विष्णुस्मृति अ० ७१

अश्लील (गन्दी) बातों और अश्लील शब्दों का उच्चारण नहीं करना चाहिए।

न जानुनोः शिरोधार्यम् ।—बृहत्परा० स्मृ० ६।२७६

घुटनों पर सिर धरकर नहीं बैठना चाहिए।

न करं मस्तके दद्यात् ।—बृहत्परा० स्मृ० ६।२७६

मस्तक पर हाथ रखकर नहीं बैठना चाहिए।

विशेष—घुटनों में सिर और मस्तक पर हाथ रखकर बैठना दुःख एवं शोक की निशानी है।

नित्यं याचको न स्यात् ।—कूर्म० उ० १३।४

सदा माँगते रहने का अभ्यास नहीं रखना चाहिए।

पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत् ।

दूसरे के घर या स्थान में आज्ञा लेकर प्रवेश करना चाहिए।

न नग्नामीक्षते नारीम् ।—महा० अनु० १६२।४६

नग्न स्त्री की ओर टकटकी लगाकर नहीं देखना चाहिए।

न तीर्थे स्त्र्याकुले स्नायात् ।—बृहत्परा० स्मृ० २।१०५

नदी अथवा तालाब के जिस घाट पर स्त्रियाँ नहाती हों, वहाँ पुरुष को स्नान नहीं करना चाहिए।

करिष्यामीति ते कार्यं न कुर्यात्कार्यलम्बनम् ।—शुक्रना० २।२३२

"मैं तुम्हारा कार्य करूँगा"—किसी को ऐसा वचन देकर उसके काम में विलम्ब नहीं करना चाहिए ।

मूत्रं नोत्तिष्ठिता कार्यम् ।—महा० अनु० १०४

खड़े होकर पेशाब नहीं करना चाहिए ।

विशेष—हार्ट-फेल (Heart-failure) होने के अनेक कारणों में से एक कारण खड़े होकर पेशाब करना भी है ।

नाञ्जलिना पिबेत् ।—गौतमधर्म० १।६।१०

अञ्जलि से जल नहीं पीना चाहिए ।

स्वास्थ्य-रक्षा

न वेगान्धारयेद्धीमान् ।—चरक० सू० ७।३

बुद्धिमान् को चाहिए कि वह टट्टी, पेशाब, छींक आदि के वेगों को न रोके ।

सर्वत एवाऽऽत्मानं गोपायेत् ।—गौ० धर्म० १।६।३४

मनुष्य को चाहिए कि सभी उपायों से अपनी रक्षा करे ।

स्वशक्तिं ज्ञात्वा कार्यमारभेत ।

अपनी शक्ति का अनुमान लगाकर उसके अनुसार ही किसी कार्य को आरम्भ करना चाहिए ।

नातिसाहसमाचरेत् ।

अति मात्रा में साहस नहीं करना चाहिए; अपनी प्रकृति और शक्ति के अनुसार ही साहस करे ।

न नक्तं दधि भुञ्जीत ।—चरक० सूत्र० ८।२०

रात्रि में दही नहीं खाना चाहिए ।

मूर्ध-श्रोत्र-घ्राण-पाद-तैलनित्यः ।—चरक० सूत्र० ८।१८

प्रतिदिन सिर में तेल लगाना चाहिए, कानों में तेल डालना चाहिए, नाक से तेल सूँघना चाहिए और पैरों के तलवों में तेल मलना चाहिए ।

आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो वर्षाणां जीवते शतम् ।

—महा० अनु० १०४।६२

पैरों को भिगोकर (पैर धोकर) भोजन करनेवाला मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहता है (अतः पैर धोकर भोजन करना चाहिए)।

वेशभूषा

साधुवेशः ।—चरक० सूत्र० ८।१८

सज्जनों जैसा वेश धारण करना चाहिए ।

उद्धतवेशधरो न भवेत् ।—चाणक्यसूत्र० ६६

उद्धत और उद्दण्ड-जैसा वेश कभी नहीं धारण करना चाहिए।

सति विभवे न जीर्णमलवद्वासः स्यात् ।—गौ० धर्म० १।६।४

धन होने पर अथवा अन्य वस्त्र होने पर फटे हुए और मैले वस्त्र नहीं पहनने चाहिएँ ।

न चामङ्गलवेशः स्यात् ।—मार्कण्डेयपु० ३४।८६

अमङ्गलसूचक वेश धारण नहीं करना चाहिए ।

वस्त्रोपानहमाल्योपवीतान्यन्यधृतानि न धारयेत् ।

— विष्णुस्मृ० अ० ७१

दूसरों द्वारा धारण किये हुए, प्रयोग में लाये हुए वस्त्र, जूता, माला और यज्ञोपवीत को धारण नहीं करना चाहिए।

प्रसाधितकेशः ।

सिर के बालों को साफ-सुथरा और सँवारकर रखना चाहिए, (हिप्पीकट नहीं बनना चाहिए)।

न रूढश्मश्रुरकस्मात् ।—गौतमस्मृ० अ० ६

बिना किसी कारण के दाढ़ी-मूँछ बढ़ाकर नहीं रखनी चाहिएँ।

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः ।—मनु० ४।३५

केश, नख एवं दाढ़ी कटवाते रहना चाहिए। शिष्ट एवं सभ्य व्यवहार करना चाहिए। सफेद वस्त्र पहनने चाहिएँ तथा पवित्र

एवं साफ-सुथरा रहना चाहिए।

घर की स्वच्छता

वेश्म च शुचिः।--कामसूत्र ४।१

घर को साफ-सुथरा एवं पवित्र बनाकर रखना चाहिए।

सुसंमृष्टस्थानम्।—का० सू० ४।१

घर के प्रत्येक स्थान को झाड़-बुहारकर स्वच्छ रखना चाहिए।

विरचितविविधकुसुमम्।—का० सू० ४।१

घर की दीवारों पर विविध रंगों से नाना प्रकार की फूल-पत्तियाँ बनानी चाहिएँ, अथवा गमलों में नाना प्रकार के फूल सजाकर रखने चाहिएँ।

श्लक्ष्णभूमितलम्।—का० सू० ४।१

फ़र्श को खूब चमकाकर रखना चाहिए।

हृद्यदर्शनम्।—का० सू० ४।१

घर को अत्यन्त दर्शनीय, प्रिय, मनोहर और पवित्र बनाकर रखना चाहिए।

वार्तालाप

स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात्।

मन्द-मन्द मुस्कराते हुए प्रसन्न-मुद्रा में बातचीत करनी चाहिए, गम्भीर या उदास मुद्रा में नहीं।

न विगृह्य कथां कुर्यात्।

लड़-झगड़कर बातें नहीं करनी चाहिएँ, शान्ति और शिष्टता के साथ बातें करनी चाहिएँ।

न च हास्येन भाषणम्।

सदा हँसते हुए बात नहीं करनी चाहिए; जहाँ उचित हो वहीं हँसकर बात करनी चाहिए।

कथाभङ्गं न कुर्वीत।

यदि कोई बात चल रही हो तो उसे बीच में टोककर या अन्य

प्रसङ्ग लाकर उसे तोड़ना नहीं चाहिए।

सभा-सम्मेलन

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समञ्जसम्।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी॥—मनु० ८।१३

या तो सभा में जाना नहीं चाहिए, यदि चले गये तो सत्य बोलना चाहिए। अन्याय की बात पर मौन रहनेवाला अथवा व्यर्थ बोलनेवाला मनुष्य पापी होता है।

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः।
नि बर्हिषि प्रिये सदः।—ऋ० ६।५५।२

हे सोम! प्रिय! जैसी तेरी आर्थिक स्थिति और प्रतिष्ठा है, जैसा तेरा जन्म है, तेरी कुलीनता है, विद्यारूपी प्रकाश है, तू उसी के अनुसार प्रिय आसन पर बैठ।

न तत्रोपविशेद्यत एनमन्य उत्थापयेत्।—बौधा० स्मृ० २।३।५६

सभा में बिना सोचे-विचारे किसी ऐसे स्थान पर नहीं बैठना चाहिए जहाँ से कोई दूसरा व्यक्ति उसे उठा दे। अपने योग्य स्थान पर ही बैठना चाहिए।[1]

कुर्यात्पर्यस्तिकां नैव न च पादप्रसारणम्।
न निद्रां विकथां वापि सभायां कुक्रियां न च॥

—विवेकविलास २।९५

सभाओं में पलँग बिछाकर नहीं बैठना चाहिए। पाँव पसारकर भी नहीं बैठना चाहिए। सभाओं में ऊँघना नहीं चाहिए, व्यर्थ की बातें या विपरीत प्रसङ्ग की बातें नहीं करनी चाहिएँ, किसी भी प्रकार का अनुचित आचरण या चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

---

१. इस विषय में आर्यसमाज के संस्थापक, क्रान्ति के अग्रदूत, अखण्ड ब्रह्मचारी योगिराज महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी लिखा है—

"सभा में वैसे स्थान पर बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे।"

—**स० प्र० द्वितीय समुल्लास**

सभी के साथ प्रेम तथा सहानुभूति

सर्वप्राणिषु बन्धुभूतः स्यात् ।—चरक० सू० ८।१८

सब प्राणियों के साथ भाई के समान व्यवहार करना चाहिए ।

तथा च सर्वभूतेषु वर्तितव्यं यथात्मनि ।—महा० शा० १६७।६

समस्त प्राणियों के साथ अपने ही जैसा व्यवहार करना चाहिए ।

वात्सल्यात्सर्वभूतेभ्यो वाच्याः श्रोत्रसुखा गिरः ।
परितापोपघातश्च पारुष्यं चात्र गर्हितम् ॥

—महा० शा० १९१।४

वाणी ऐसी बोलनी चाहिए जिसमें सभी प्राणियों के प्रति स्नेह भरा हो और जो सुनते समय कानों को प्रिय लगनेवाली हो । दूसरों को पीड़ा देना, मारना और कटु वचन सुनाना ये सब निन्दित कर्म हैं ।

मूकाऽन्ध-बधिर-व्यङ्गा नोपहास्याः कदाचन ।

गूँगे, अन्धे, बहरे तथा अपङ्ग (लूले-लंगड़े) लोगों का कभी उपहास (हँसी) नहीं करना चाहिए ।

हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोऽधिकान् ।
रूपद्रव्यविहीनाँश्च जातिहीनाँश्च नाक्षिपेत् ॥—मनु० ४।१४१

हीन अङ्गवाले, अधिक अङ्गवाले, मूर्ख, बूढ़े, कुरूप, निर्धन तथा हीनजाति के मनुष्य को आक्षेपयुक्त (अन्धा, काना, लंगड़ा आदि) वचन नहीं बोलना चाहिए, उनका तिरस्कार=अपमान नहीं करना चाहिए ।

प्रत्यक्षं च परोक्षं च परेषामाचरेत्प्रियम् ।

प्रत्यक्ष और परोक्ष—दोनों प्रकार से दूसरों को प्रिय लगनेवाला आचरण करना चाहिए ।

सर्वप्राणभृतां शर्म आशासितव्यमहरहः उत्तिष्ठता चोपविशता च ।

प्रतिदिन उठते और बैठते समय समस्त प्राणियों के मङ्गल की कामना करनी चाहिए ।

सर्वेषां मङ्गलं भूयात्सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

—गरुडपु० उ० ३५।५१

सबका कल्याण हो, सब सुखी हों, सभी अपने जीवन में भद्र=कल्याण-ही-कल्याण देखें, संसार में कोई भी दुःखी न हो (ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए)।

आत्म-निर्माण

स्वयं वाजिंस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥—यजु० २३।१५

हे शक्तिशालिन् ! तू स्वयं अपने शरीर को सबल, दृढ़ और शक्तिशाली बना। तू स्वयं यज्ञ=श्रेष्ठकर्म कर, स्वयं परोपकार कर और स्वयं ही अपने भाग्य-निर्माण में जुट जा। तेरी महिमा, तेरा गौरव किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, तेरी महिमा और गौरव को दूसरा कोई नष्ट भी नहीं कर सकता।

तू अपनी शक्तियों को पहचान और घोषणापूर्वक कह—

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥

—अथर्व० ४।१३।६

मेरा यह (दाहिना) हाथ ऐश्वर्यशाली है और बायाँ हाथ, यह तो उससे भी अधिक ऐश्वर्यशाली है। मेरे दाहिने हाथ मे हर प्रकार की ओषधियाँ हैं और बाएँ हाथ का तो स्पर्श=छूना ही कल्याणकारी है।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः ।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित् ॥

—अथर्व० ७।५०।८

मेरे दाहिने हाथ में कर्म है और बाएँ हाथ में विजय। मैं गौओं और भूमियों का, घोड़ों और राष्ट्रों का विजेता बनूं। मैं अपने कर्म,

उद्योग और पुरुषार्थ से धन-सम्पत्ति का विजेता बनूं।

पुरुषार्थ करो, आलस्य से दूर रहो क्योंकि—

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति॥

—नीतिश० ८३

आलस्य मनुष्य के शरीर में रहनेवाला बहुत बड़ा शत्रु है; अन्य शत्रु बाहर से आक्रमण करते हैं, यह अन्दर से आक्रमण करता है। उद्यम=पुरुषार्थ के समान कोई बन्धु नहीं है। उद्योगी=पुरुषार्थी मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता।

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न क्लीबा नाभिमानिनः।
न च लोकरवाद्भीता न वै शश्वत् प्रतीक्षिणः॥

—महा० शा० १४०।२३

आलसी मनुष्य अपने अभीष्ट=मनोवाञ्छित फलों को प्राप्त नहीं कर पाते। नपुंसक, अभिमानी, लोक-अपवाद से भयभीत और सदा अवसर की प्रतीक्षा करनेवाले भी अपने अभीष्ट को प्राप्त नहीं कर पाते।

विद्या शौर्यं च दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पञ्चमम्।
मित्राणि सहजान्याहुर्वर्तयन्तीह तैर्बुधाः॥

—शुक्रनी० ४।१३

विद्या, शूरवीरता=शीघ्रता से कार्य कर डालना, दक्षता=चतुरता, बल, धैर्यपूर्वक कार्य में लगे रहना और हिम्मत न हारना—ये पाँच बातें मनुष्य के सहज मित्र हैं, बुद्धिमान् लोग इनसे लाभ उठाते हैं।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥

—विदुरनी० १।१०४

बुद्धि, कुलीनता, दम=चञ्चल मन को वश में करना, श्रुत=श्रवण और अध्ययन, पराक्रम, मितभाषण (थोड़ा बोलना, मौन रहना) यथाशक्ति दान देना और कृतज्ञता (दूसरे के उपकार को मानना, उसका बदला चुकाना)—ये आठ गुण मनुष्य को चमकाते हैं, उसे प्रसिद्ध करते हैं और उसके जीवन को उज्ज्वल बनाते हैं।

सावधान ! दिन बीते जाते हैं—

स्रवन्ति न निवर्तन्ते स्रोतांसि सरितामिव ।
आयुरादाय मर्त्यानां राव्यहनि पुनः पुनः ॥

—महा० शा० ३३१५

जैसे झरनों और नदियों का प्रवाह आगे की ओर ही बढ़ता चला जाता है, पीछे की ओर नहीं लौटता, वैसे ही दिन-रात भी मनुष्य की आयु को लेकर चले जाते हैं, लौटते नहीं हैं।

यावत्स्वस्थमिदं देहं यावन्मृत्युश्च दूरतः ।
तावदात्महितं कुर्यात्प्राणान्ते किं करिष्यति ॥

जबतक शरीर स्वस्थ है और मृत्यु दूर है, तभी तक आत्म-कल्याण कर लेना चाहिए, मरने पर क्या कर सकेगा ?

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥

—महा० उद्यो० १३५।२९

"सफलता होगी ही"—मन में ऐसा दृढ़ विश्वास करके और निरन्तर दीनतारहित होकर तुझे उठना, सजग होना और ऐश्वर्य की प्राप्ति करानेवाले कार्यों में लग जाना चाहिए।

परमेश्वर

जगतां यदि नो कर्त्ता कुलालेन विना घटः ।
चित्रकारं विना चित्रं स्वयमेव भवेदिह ॥

यदि इस संसार का कोई बनानेवाला नहीं है तो कुम्हार के बनाये बिना घड़ा और चित्रकार के बनाये बिना चित्र अपने-आप

ही बन जाना चाहिए।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ।—ऋ० १।१६४।४६

एक ही परमात्मा को विद्वान् लोग अनेक नामों से पुकारते हैं।

यस्य भूमिप्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

—अथर्व० १०।७।३२

पृथिवी जिस परमात्मा के पैरों के समान है, अन्तरिक्ष जिसका उदर (पेट) है, द्युलोक जिसका सिर है, ऐसे सबसे महान् परमेश्वर को बारम्बार नमस्कार है।

सर्वेन्द्रिय-गुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ॥

—श्वेता० उप० ३।१७

परमेश्वर सभी इन्द्रियों के गुणों का ज्ञान करनेवाला है, परन्तु सभी इन्द्रियों के गोलकों से रहित है। वह सबका स्वामी है, सबका शासक है। वह सबसे महान् है और सबका आश्रय है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसा परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

—यजु० ३१।१८

मैं उस महापुरुष (ब्रह्म, परमेश्वर) को जानूं, जो सूर्य के समान देदीप्यमान और अज्ञान-अन्धकार से सर्वथा रहित है। उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु को भी लाँघ जाता है। उसे जाने बिना मृत्यु से छूटने का, संसार-सागर को तरने का, मोक्ष की प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।
नमो भरन्त एमसि ॥—ऋ० १।१।७

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हम उपासक प्रतिदिन प्रातः और साय नमस्कार की भेंट लेकर तेरी ओर आ रहे हैं, तुझे ध्या रहे हैं,

तेरी उपासना कर रहे हैं।

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥

—मनु० २।१०३

जो द्विज [ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य] प्रातः और सायंकाल सन्ध्या-उपासना नहीं करता, वह शूद्र के समान सम्पूर्ण द्विजकर्मों से बहिष्कृत करने [निकाल देने] योग्य है।

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च ॥

—मनु० ४।९४

ऋषियों ने बहुत देर तक सन्ध्या [सन्ध्या में गायत्री का जप] करके लम्बी आयु, बुद्धि, कीर्ति, यश और ब्रह्मतेज को प्राप्त किया (अतः इन गुणों की कामनावाले प्रत्येक मनुष्य को सन्ध्या करनी चाहिए)।

गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम्।
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥

—शंखस्मृ० १२।२५

लोक और परलोक में गायत्री से बढ़कर और कोई पवित्र करनेवाला साधन नहीं है। गायत्री नरकरूपी समुद्र में पड़े हुए मनुष्य का हाथ पकड़कर बचानेवाली है।

जिस गायत्री की इतनी महिमा है, वह मन्त्र यह है—

ओ३म्। भूर्भुवः स्वः।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥—यजु० ३६।३

हे सर्वरक्षक! सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर! हम सर्वप्रकाशक, आनन्दप्रद और सर्वप्रेरक परमेश्वर के उस वरण करने योग्य तेज का ध्यान करते हैं, उसे अपने जीवन में धारण करते हैं, जो हमारी

बुद्धि और कर्मों को सुमार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे, करता है।

धर्म

सर्वेषां भूषणं धर्मः।—चाणक्यसू० ३६७

धर्म मनुष्यमात्र का आभूषण है।

सुखस्य मूलं धर्मः।

सुख का मूल [कारण] धर्म है अर्थात् धर्म से सुख की प्राप्ति होती है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

—मनु० ६।९२

धैर्य, क्षमा, मन को वश में रखना, चोरी न करना, बाहर और भीतर की पवित्रता, इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि को तीक्ष्ण करना, विद्या का उपार्जन, सत्य बोलना और क्रोध न करना—ये दस धर्म के लक्षण हैं।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

—मनु० २।१२

वेद में उपदिष्ट, स्मृति में कथित, महापुरुषों से सेवित आचार और जो व्यवहार अपनी आत्मा को प्रिय लगे—ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण हैं।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।—वै० १।१।२

जिससे इस लोक में भोग और परलोक में मोक्ष की सिद्धि हो, वह धर्म है।

सं गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे संजानाना उपासते।

—ऋ० १०।१९१।२

हे मनुष्यो! तुम सब मिलकर चलो, एक-दूसरे के साथ प्रेम-

पूर्वक वार्तालाप करो। तुम सबके मन भी एक-समान हों। जिस प्रकार पूर्वकाल के विद्वान् परमात्मा की उपासना करते रहे, उसी प्रकार तुम भी ज्ञानसम्पन्न होकर परमेश्वर की उपासना करो।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

धर्म का सार सुनो और सुनकर उसे अपने जीवन में धारण करो। धर्म का सार है—जो कार्य और व्यवहार अपनी आत्मा के प्रतिकूल हो, वह दूसरों के प्रति मत करो अर्थात् दूसरों के प्रति वही व्यवहार करो जो तुम अपने लिए चाहते हो।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥

—वन० ३१३।१२८

मारा हुआ धर्म मनुष्य को मार देता है और रक्षा किया हुआ धर्म मनुष्य की रक्षा करता है, अतः धर्म का हनन [मारना] नहीं करना चाहिए, जिससे मारा हुआ धर्म हमें न मार दे।

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥

—शुक्रनी० ३।१-२

सभी प्राणियों की सारी चेष्टाएँ आत्म-सुखप्राप्ति के लिए होती हैं और सुख धर्म के बिना प्राप्त नहीं होता, अतः धार्मिक बनना चाहिए।

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥

—मनु० ४।२३९

परलोक में माता-पिता, पुत्र, पत्नी, सगे और सम्बन्धी—कोई भी सहायता के लिए नहीं जाता, केवल धर्म ही मनुष्य के साथ जाता है, अतः धर्म का संग्रह करना चाहिए।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे
नारी गृहद्वारि सखा श्मशाने ।
देहश्चितायां परलोकमार्गे
धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

धन भूमि में गड़े रह जाते हैं, पशु बाड़े में बँधे रह जाते हैं, नारी घर के दरवाजे पर रह जाती है, मित्र श्मशान में रह जाते हैं। परलोकमार्ग में शरीर भी चिता पर रह जाता है, मनुष्य के साथ केवल उसका धर्म [शुभ और अशुभ कर्म] जाता है।

धर्मो माता पिता चैव धर्मो बन्धु सुहृत्तथा ।
धर्मः स्वर्गस्य सोपानं धर्मात्स्वर्गमवाप्यते ॥

धर्म ही माता और पिता है, धर्म ही बन्धु=भाई और मित्र है। धर्म स्वर्ग में जाने की सीढ़ी है, धर्म से ही स्वर्ग=सुख की प्राप्ति होती है।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा दया ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥

—विदुरनी० ३।५७

यज्ञ, स्वाध्याय, दान, तप, सत्यभाषण, क्षमा, दया और लोभ न करना—यह आठ प्रकार का धर्म कहा गया है।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः ॥

—महा० शा० १६२।२१

मन, वचन और कर्म से सभी प्राणियों के प्रति वैरत्याग, सबपर दया करना और दान देना—यह श्रेष्ठ पुरुषों का सनातन धर्म है।

आहारनिद्रा भयमैथुनञ्च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥

आहार [खाना-पीना], निद्रा = सोना, भय और सन्तान उत्पन्न करना—ये चार बातें मनुष्यों और पशुओं में समान हैं। मनुष्य की विशेषता है धर्म का पालन और आचरण। धर्म से हीन होने पर मनुष्य भी पशु के समान ही है।

मृषावादं परिहरेत् कुर्यात्प्रियमयाचितः।
न च कामान्न संरम्भान्न द्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत्॥

—महा० वन० २०७।४२

झूठ बोलना छोड़ दे। बिना कहे ही दूसरों का प्रिय करे। कामना से, क्रोध से और द्वेष से कभी भी धर्म का त्याग न करे।

माता-पिता

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः।

—अथर्व० ३।३०।२

पुत्र को पिता के उत्तम व्रतों = दान, दया, सहानुभूति, अतिथि-सेवा, प्रभु-उपासना आदि शुभ गुणों का आचरण करना चाहिए और माता की सद्भावनाओं को जीवन में ढालना चाहिए।

मातृदेवो भव ! पितृदेवो भव !

—तैत्ति० उप० शिक्षा० ११।२

माता को देवतास्वरूप समझो ! पिता को देव जानो !

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने सर्वाः प्रीयन्ति देवताः॥

—महा० शा० २६६।२१

पिता ही धर्म है, पिता ही स्वर्ग है और पिता ही सबसे श्रेष्ठ तपस्या है। पिता के प्रसन्न हो जाने पर सारे देवता प्रसन्न हो जाते हैं।

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात्सर्वयत्नेन पूजयेत्॥

मातरं पितरं चैव यस्तु कुर्यात्प्रदक्षिणम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥

—पद्म० सृष्टि ४७।११,१२

माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओं का स्वरूप है, इसलिए प्रयत्नपूर्वक सब प्रकार से माता-पिता का पूजन= आदर-सत्कार करना चाहिए। जो माता-पिता की प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सात द्वीपों से युक्त सारी पृथिवी की प्रदक्षिणा हो जाती है।

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥

—मनु० २।१४५

दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता और एक हजार पिताओं की अपेक्षा माता गौरव में अधिक है।

नास्ति मातृसमो गुरुः ।—महा० शा० ३४२।१८

माता के समान कोई दूसरा गुरु नहीं है।

माता गुरुतरा भूमेः ।—महा० वन० ३१३।६०

माता गौरव में पृथिवी से भी भारी है।

खात् पितोच्चतरस्तथा ।—महा० वन० ३१३।६०

पुत्र के लिए मङ्गल भावनाओं की दृष्टि से पिता आकाश से भी ऊँचा है।

पितरौ लंघयेद्यस्तु वचोभिः पुरुषाधमः ।
निरये च वसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥
रोगिणं चापि वृद्धं च पितरं वृत्तिकर्शितम् ।
विकलं नेत्रकर्णाभ्यां त्यक्त्वा गच्छेच्च रौरवम् ॥

—पद्म० सृष्टि ४७।१७,१९

जो नीच पुरुष माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करता है,

वह महाप्रलय-पर्यन्त नरक में निवास करता है। जो रोगी, वृद्ध, जीविका से रहित, अन्धे और बहरे पिता को छोड़कर चला जाता है वह रौरव नरक [घोर कष्ट] में पड़ता है।

मातरं पितरं विप्रमाचार्यं चावमन्यते।
स पश्यति फलं तस्य प्रेतराजवशं गतः॥

जो माता, पिता, ब्राह्मण और आचार्य का अपमान करता है, वह निश्चय ही यमराज के वश में पड़कर उसका फल देखता [भोगता] है।

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

—मनु० २।२२७

सन्तानों की उत्पत्ति और पालन-पोषण में माता-पिता जो कष्ट तथा दुःख सहते हैं, उसका बदला सैकड़ों वर्षों की सेवा से भी नहीं चुकाया जा सकता।

यदा पिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन्।
एतत्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया।
सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ
वि मा पाप्मना पृङ्क्त॥—यजु० १६।११

बाल्यकाल में स्तन-पान करते हुए प्रहृष्ट [प्रसन्न] शिशु ने जो माता को पीस डाला, स्तनों को दाँत से चबाया, उसके शरीर पर मल-मूत्र किया, बड़ा होकर उस ऋण की अनुभूति करते हुए पुत्र प्रार्थना करता है—हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! मैं उस ऋण से उऋण होता हूँ। मेरे द्वारा माता-पिता दुःखी न हों, अपितु सुखी हों। हे माता-पिताओ! आप शुभ कर्मों के साथ जोड़नेवाले हैं, अतः मुझे भद्रता=श्रेष्ठ गुणों से संयुक्त करो, मुझे सुसंस्कारों से संयुक्त करो। आप बुराई से, कुसंस्कारों से बचानेवाले हैं, अतः मुझे पाप और कुसंस्कारों से बचाओ।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम् ॥

—मनु० २।१२१

नित्यप्रति माता-पिता, गुरु और वृद्धजनों को प्रणाम और उनकी सेवा करनेवाले मनुष्य की आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते हैं।

आचार्य

गुरोः पादोपसंग्रहणं प्रातः ।—गोतमधर्म० १।१।५३

प्रतिदिन प्रातःकाल गुरु के चरण छूने चाहिएँ।

आचार्यस्याप्रतिकूलः ।—काठकगृह्य० १।१६

आचार्य के प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिए।

गुरुणा चैव निर्बन्धो न कर्त्तव्यः कदाचन ॥

—महा० अनु० १०४।८०

गुरु के साथ कभी भी वैर-विरोध नहीं करना चाहिए।

नाभुक्तवति चाश्नीयादपीतवति नो पिबेत् ।
नातिष्ठति तथाऽऽसीत् नासुप्ते प्रस्वपेत च ॥

महा० शा० २४२।२१

जबतक आचार्य भोजन न कर ले, तबतक शिष्य भी भोजन न करे। जबतक वे जलपान न कर लें, तबतक वह स्वयं भी न पिये। जबतक आचार्य न बैठ जाए, तबतक स्वयं भी न बैठे। जबतक गुरु न सोये, तबतक स्वयं भी न सोये।

य आतृणत्त्यवितथेन कर्णाव—
दुःखं कुर्वन्नमृतं संप्रयच्छन् ।
तं मन्येत पितरं मातरं च
तस्मै न द्रुह्येत्कतमच्चनाह ॥

—निरुक्त० २।४।२

जो गुरु दुःख न देते हुए, अमृत प्रदान करने के लिए सत्य

वेदज्ञान के द्वारा शिष्य के बन्द कानों को खोल देता है, शिष्य को चाहिए कि उस गुरु को माता और पिता समझे तथा उसके प्रति कभी भी किसी भी अवस्था में द्रोह न करे।

अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते
विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा।
यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्
तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत्॥

—निरुक्त० २।४।३

जो शिष्य पढ़-लिखकर, विद्वान् बनकर मन, वचन और कर्म से अपने गुरु का आदर नहीं करते, जैसे वे गुरु के कृपापात्र नहीं बनते, उसी प्रकार वह शिक्षा भी उनका पालन नहीं करती।

स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

—यो० द० १।२६

परमात्मा पूर्वगुरुओं [अग्नि, वायु आदि ऋषियों, माता, पिता, आचार्य आदि] का भी गुरु है। वह ऐसा गुरु है जिसे काल भी समाप्त नहीं कर सकता, वह काल का भी काल है।

वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भकाः।
सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते॥
स्वयमाचरते यस्मादाचारं स्थापयत्यपि।
आचिनोति च शास्त्रार्थान्यमैः संनियमैर्युतः॥

—वायु० पु० ५८।२९-३०

जो [ज्ञान, वय और अनुभव] वृद्ध, लोभहीन, आत्मवान्, दम्भ-शून्य, विनीत और सरल स्वभाववाले हैं, वे आचार्य कहलाते हैं।

जो स्वयं अपनी विद्या के अनुकूल आचरण करते हैं, विद्यार्थियों को आचार में स्थापित करते हैं, तथा यम-नियमों का पालन करते हुए शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन करते [पढ़ते-पढ़ाते] हैं, वे आचार्य कहलाते हैं।

वृद्ध, विद्वान्

अभिवादयीत् वृद्धाँश्च दद्याच्चैवासनं स्वयम् ।
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छन्तं पृष्ठतोऽन्वियात् ॥

—महा० अनु० १०४।६५

जब कोई वृद्ध पुरुष अपने पास आये तब उसे प्रणाम करके बैठने के लिए आसन दे और स्वयं हाथ जोड़कर उसकी सेवा में उपस्थित रहे। जब वह जाने लगे तब उसके पीछे-पीछे दूर तक उसे पहुँचाने जाए।

वृद्धान् नाभिभवेज्जातु न चैतान् प्रेषयेदिति ।
नासीनः स्यात्स्थितेष्वेवमायुरस्य न रिष्यते ॥

—महा० अनु० १६२।४५

वृद्ध पुरुषों का कभी अपमान न करे, न उन्हें नौकरों की भाँति किसी काम के लिए भेजे। यदि वे खड़े हों तो स्वयं बैठा न रहे। ऐसा करने से उस मनुष्य की आयु क्षीण नहीं होती।

न जातु त्वमिति ब्रूयादापन्नोऽपि महत्तरम् ।
त्वंकारो वा वधं वेति विद्वत्सु न विशिष्यते ॥

—महा० अनु० १६२।५२

बड़े-से-बड़ा संकट पड़ने पर भी वृद्ध पुरुषों के प्रति 'तू' या 'तुम' शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए। किसी को 'तू' कहकर पुकारना अथवा उसका वध कर देना—इन दोनों बातों में विद्वान् लोग कोई अन्तर नहीं समझते।

विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा ।
वृद्धोपसेवाया विज्ञानम् ॥—चाणक्यसूत्र ६-७

वृद्धों की सेवा करना विनय का मूल है। वृद्धों की सेवा से विज्ञान की प्राप्ति होती है।

विनय-बुद्धि-विद्याऽभिजन-वयोवृद्ध-सिद्धाचार्याणामुपासिता ।

—चरक० सूत्र० ८।१८

मनुष्य को विनय, बुद्धि, विद्या, कुल और अवस्था में वृद्ध व्यक्ति, सिद्ध एवं आचार्य की सेवा करनेवाला होना चाहिए।

वाक्येन वाक्यस्य प्रतिघातमाचार्यस्य वर्जयेत् श्रेयसां च।

—आपस्तम्ब० धर्म० २।५।११

अपने आचार्य अथवा अपने से श्रेष्ठ पुरुषों से वार्तालाप के समय अपने वाक्य से उनके वाक्य को बीच में नहीं काटना चाहिए।

दानैर्मानैश्च सत्कारैः सुपूज्यान् पूजयेत्सदा।

—शुक्रनी० ३।८४

जो अत्यन्त पूज्य हैं, उनका दान, मान और सेवा से सदा सत्कार करना चाहिए।

अधस्तादिव हि श्रेयस उपचारः।—शतपथ १।१।१।११

बड़े लोगों की सेवा-सुश्रूषा अत्यन्त नम्रता के साथ करनी चाहिए और उनके पास स्वयं छोटा बनकर रहना चाहिए।

अतिथि

अशितावत्यतिथावश्नीयात्।—अथर्व० ९।६।३८

अतिथि के भोजन कर चुकने पर भोजन करना चाहिए।

केवलाघो भवति केवलादी।—ऋ० १०।११७।६

अकेला खानेवाला केवल पाप ही खाता है।

स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः।—अथर्व० ९।६।२३

अतिथि मनुष्य को स्वर्गलोक [सुख की स्थिति] में ले जाते हैं।

गृहे वसतु नोऽतिथिः।—अथर्व० १०।६।४

हमारे घर में अतिथि निवास करे।

अतिथिमभ्यागतं पूजयेद्यथाविधि।—चाणक्यसू० ५१४

अभ्यागत-अतिथि का विधिपूर्वक सत्कार करना चाहिए।

शेषभोज्यतिथीनां स्यात्।—आपस्त० धर्म० ४।१।२

अतिथियों के भोजन करने के पश्चात् ही भोजन करे।

अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ।
याचितारश्च नः सन्तु मा याचिष्म कदाचन ॥

हमारे घरों में अन्न खूब हो, अन्न के भण्डार भरे हुए हों, हमारे घर में अतिथि निरन्तर आते रहें। याचक भी हमारे पास आते रहें परन्तु हम किसी से याचना न करें।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥

—स्कन्द० पु० ना० उ० १७६।५

जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसे [उस गृहस्थ को] वह अपना पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चल देता है।

विशेष—पाप और पुण्य की कोई गठड़ी नहीं होती। अतिथि की सेवा न करने से मनुष्य को अपयश मिलता है, बस इतना ही तात्पर्य है।

भाई-बहन

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

—अथर्व० ३।३०।३

भाई से भाई द्वेष न करे। बहन से बहन द्वेष न करे। भाई और बहन भी परस्पर द्वेष न करें। भाई और बहन सब एक विचार और एक व्रतवाले होकर, मिल-जुलकर रहें तथा परस्पर कल्याण-मयी मधुर वाणी ही बोलें।

मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम् ।—अ० ६।३२।३

आपस में लड़नेवाले मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

अन्धः स्यादन्धवेलायां जडः स्यादपि वा बुधः ।
परिहारेण तद्ब्रूयाद् यस्तेषां स्याद्व्यतिक्रमः ॥

—महा० अनु० १०५।४

बड़े भाई को चाहिए कि वह अवसर के अनुसार अन्धा, जड़ =मूर्ख और विद्वान् बन जाए अर्थात् यदि छोटे भाइयों से कोई अपराध हो जाए तो उसे देखते हुए भी न देखे, जानकर भी अनजान बना रहे और उनसे ऐसी बात करे जिससे उनकी अपराध करने की प्रवृत्ति दूर हो जाए।

स ह्येषां वृत्तिदाता स्यात्स चैतान् प्रतिपालयेत्।
कनिष्ठास्तं नमस्येरन् सर्वे छन्दानुवर्तिनः॥

महा० अनु० १०५।१७

बड़े भाई को उचित है कि वह अपने छोटे भाइयों को जीविका प्रदान करे और उनका पालन-पोषण करे। छोटे भाइयों का भी कर्त्तव्य है कि वे सब-के-सब बड़े भाई के सामने नतमस्तक हों और उसकी इच्छा के अनुसार ही चलें।

न ज्येष्ठो वावमन्येत दुष्कृतः सुकृतोऽपि वा।
यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयश्चेत् तत्तदाचरेत्॥

—महा० अनु० १०५।१३

बड़ा भाई अच्छा काम करनेवाला हो या बुरा, छोटों को उसका अपमान नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार यदि स्त्री अथवा छोटा भाई बुरे रास्ते पर चल रहे हों तो बड़े भाई को जिस तरह भी उनकी भलाई हो वही कार्य करना चाहिए।

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥

—वा० रा० यु० १०१।१४

देश-देश में भार्या और बन्धु-बान्धव हो सकते हैं, परन्तु मुझे ऐसा देश दिखाई नहीं देता जहाँ सहोदर=सगा भाई मिल सके।

भृत्य=नौकर-चाकर

अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च।
सामान्यं भोजनं भृत्यैः पुरुषस्य प्रशस्यते॥—महा० शा० १९३।९

घर में अतिथियों, सेवकों, स्वजनों, और नौकर-चाकरों—सभी के लिए एक-जैसा भोजन बनवाना श्रेष्ठ माना गया है ।

दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ।—मनु० ४।१८०

सेवक लोगों के साथ विवाद अर्थात् व्यर्थ लड़ाई-बखेड़ा कभी न करे ।

कालातिक्रमणं वृत्तेर्यो न कुर्वीत भूपतिः ।
कदाचित्तं न मुञ्चन्ति भर्त्सिता अपि सेवकाः ।।

—पञ्च० १।१६५

जो राजा=स्वामी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को ठीक-ठीक समय पर उनका पारिश्रमिक=वेतन देगा, उसके सेवक अपने स्वामी के अपमानजनक व्यवहार को सहकर भी कभी उसका त्याग नहीं करेंगे ।

राजा

रिक्तहस्तो न राजानमभिगच्छेत् ।
गुरुं च दैवतं च ।। —चाणक्यसू० ३७४-३७५

राजा के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए ।

गुरु और देवता=महापुरुषों, विद्वानों और संन्यासियों के पास भी रीते हाथ नहीं जाना चाहिए ।

दृष्टद्वारो लभेद् द्रष्टुम् ।—महा० वि० ४।१३

राजा से मिलना हो तो पहले द्वारपाल से मिलकर राजा को सूचना देनी चाहिए और मिलने के लिए आज्ञा माँग लेनी चाहिए ।

राजस्वेषु न विश्वसेत् ।—महा० वि० ४।१३

इन राजाओं [मिनिस्टरों, संसद्-सदस्यों, विधायकों] पर कभी भी पूर्ण विश्वास न करे ।

न चानुशिष्याद् राजानंमपृच्छन्तं कदाचन ।
तूष्णीं त्वेनमुपासीत काले समभिपूजयेत् ।।

—महा० वि० ४।१६

विना पूछे राजा को कभी कर्तव्य का उपदेश न दे, मौनभाव से उसकी सेवा करे और उपयुक्त अवसर पर राजा की प्रशंसा भी करे।

न चोष्ठौ न भुजौ जानू न च वाक्यं समाक्षिपेत् ।
सदा वातं च वाचं च ष्ठीवनं चाचरेच्छनैः ॥

महा० वि० ४।३५

राजा के सामने अपने दोनों हाथ, ओष्ठ और घुटनों को व्यर्थ न हिलाए, बकवाद न करे। सदा शनैः-शनैः बोले। धीरे से थूके और दूसरों को पता न चले इस प्रकार अधोवायु छोड़े।

अम्लानो बलवाञ्छूरश्छायेवानुगतः सदा ।
सत्यवादी मृदुर्दान्त स राजवसतिं वसेत् ॥

—महा० वि० ४।४४

जो उत्साह-सम्पन्न, बुद्धिबल से युक्त, शूरवीर, सत्यवादी, कोमल स्वभाव और जितेन्द्रिय होकर सदा छाया की भाँति राजा का अनुसरण करता है, वही राजदरबार में टिक सकता है।

समवेषं न कुर्वीत नोच्चैः संनिहितो वसेत् ।
न मन्त्रं बहुधा कुर्यादेवं राज्ञः प्रियो भवेत् ॥

—महा० वि० ४।४८

राजा के समान वेशभूषा धारण न करे। उसके सामने ऊँचे आसन पर न बैठे, उसके अत्यन्त निकट न रहे। अपने साथ राजा ने जो गुप्त सलाह की हो उसे दूसरों पर प्रकट न करे—ऐसा करने से ही मनुष्य राजा का मित्र हो सकता है।

न कर्मणि नियुक्तः सन् धनं किञ्चिदपि स्पृशेत् ।
प्राप्नोति हि हरन् द्रव्यं बन्धनं यदि वा वधम् ॥

—महा० वि० ४।४९

यदि राजा ने किसी काम पर नियुक्त किया हो तो उसमें घूस के रूप में थोड़ा भी धन न ले, क्योंकि जो इस प्रकार चोरी से धन

लेता है, उसे एक-न-एक दिन बन्धन अथवा वध का दण्ड भोगना पड़ता है।

यानं वस्त्रमलंकारं यच्चान्यत् सम्प्रयच्छति।
तदेव धारयेन्नित्यमेवं प्रियतरो भवेत्॥—महा० वि० ४।५०

राजा प्रसन्न होकर सवारी, वस्त्राभूषण तथा और भी जो कोई वस्तु दे उसी को सदा धारण करे या उपयोग में लाये, ऐसा करने से वह राजा का अधिक प्रिय बन जाता है।

विद्या

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः।—ऋ० १।३।१०

सरस्वती=विद्या हमें पवित्र करनेवाली है। अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान प्रदान करने के कारण यह अन्नवाली, ऐश्वर्यदायिनी और ज्ञानदात्री भी है। बुद्धि से होनेवाले अनेक कर्मों के द्वारा धन प्रदान करनेवाली यह विद्या हमारे जीवन-यज्ञ को सफल बनाये।

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः।
गाय गायत्रमुक्थ्यम्॥—ऋ० १।३८।१४

हे विद्वन्! तू वेद-मन्त्रों से अपने मुख को भर ले, वेदमन्त्रों को कण्ठस्थ कर ले। फिर उस वेदवाणी को मेघ=बादलों के समान गर्जना करते हुए दूर-दूर तक फैला, उसका मनुष्यमात्र को उपदेश कर। जीवन के रक्षक वेदमन्त्रों को स्वयं गा और दूसरों से गवा, स्वयं पढ़ और दूसरों को पढ़ा।

विद्ययाऽमृतमश्नुते।—यजु० ४०।१४

विद्या से अमृत=मोक्ष की, अमर, दिव्य-जीवन की प्राप्ति होती है।

यथाग्निर्दारुमध्यस्थो नोत्तिष्ठेन्मन्थनं विना।
विना चाभ्यासयोगेन ज्ञानदीपस्तथा न हि॥

—योगशिखोप० ६।७६

जैसे लकड़ी में स्थित अग्नि रगड़ के बिना दिखलाई नहीं देती, वैसे ही ज्ञानरूपी ज्योति जो हमारे अन्दर पड़ी हुई है, वह स्वाध्याय के बिना प्रकट नहीं होती। ज्ञान ही वह दीपक है जो हमारे आत्मा को प्रकाशित करता है।

विद्याविहीनः पशुः।

विद्या से रहित मनुष्य पशु ही है।

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।

विद्वान् का सर्वत्र आदर और सम्मान होता है।

विद्या धर्मेण शोभते।

विद्या धर्म से सुशोभित होती है।

विद्या ददाति विनयम्।

विद्या से जीवन में नम्रता आती है।

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात्॥

हे विद्ये! तेरा कोश=खजाना अपूर्व है। तेरे अनमोल खजाने की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अन्य धन खर्च करने से घटते हैं परन्तु विद्याधन जितना ही खर्च किया जाए उतना ही बढ़ता है और संग्रह करने पर घटता है।

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।
लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या॥

विद्या जीवन-यात्रा में माता के समान रक्षा करती है, पिता के समान हितकारी कार्यों में नियुक्त करती है, पत्नी के समान खेद को दूर कर आनन्दित एवं प्रफुल्लित करती है और चहुँ दिशाओं में कीर्ति का विस्तार कर धन-धान्य से समृद्ध बनाती है। कल्पलता के समान विद्या कौन-सा अभीष्ट सिद्ध नहीं करती?

न चौरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारी ।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥

विद्या ऐसा धन है जिसे न चोर चुरा सकता है, न राजा छीन सकता है, न बन्धु-बान्धव इसे बाँट सकते हैं और आश्चर्य तो यह है कि इस धन का कितना ही संग्रह करते जाइए इसका भार=बोझ भी नहीं होता । इस विद्यारूपी धन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ अन्य धन खर्च करने पर घटते हैं, वहाँ यह धन जितना खर्च किया जाए उतना ही बढ़ता है इसलिए यह धन सर्व-प्रधान, सर्वश्रेष्ठ और सबसे महान् है ।

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥

मनुष्य अपने-आपको अजर=कभी बूढ़ा न होनेवाला और अमर=कभी न मरनेवाला समझकर विद्या और धन इकट्ठा करे; परन्तु मृत्यु ने हमारे बालों को पकड़ा हुआ है, पता नहीं कहाँ झटका मार दे, कब मृत्यु आ जाए, ऐसा सोचकर धर्म का आचरण करना चाहिए ।

अहेरिव गणाद्भीतः परान्नाच्च विषादिव ।
राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति ॥

जो भीड़-भाड़ से साँप के समान डरता है, दूसरे के अन्न से विष=ज़हर के समान डरता है और स्त्रियों से राक्षसी के समान डरता है, वही विद्या प्राप्त कर सकता है ।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥

—अथर्व० ११।५।१९

ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा देवों=विद्वानों ने मौत को भी मार भगाया। आत्मा ब्रह्मचर्य के प्रताप से इन्द्रियों के लिए सुख प्रदान करता है, इन्द्रियों को पुष्ट और कल्याण की ओर प्रवृत्त करने में समर्थ होता है।

शान्तिं कान्तिं स्मृतिं ज्ञानमारोग्यं चापि सन्ततिम्।
यदिच्छति महद्धर्मं ब्रह्मचर्यं चरेदिह॥

—धन्वन्तरि

जो आत्मिक शान्ति, शारीरिक कान्ति, तीक्ष्ण स्मृति, विपुल =अत्यधिक ज्ञान, आरोग्य और श्रेष्ठ सन्तति चाहते हैं, उन्हें सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

ब्रह्मचारी न काञ्चनार्त्तिमार्च्छति।—शत० ११।५।४।१२

ब्रह्मचारी कभी भी दुःखी, दीन, मलिन एवं हीन नहीं होता।

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।

वीर्यपात=वीर्यनाश मृत्यु है, और वीर्य का धारण करना—ब्रह्मचर्य ही जीवन है।

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।—यो० द० २।३८

ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होने पर, वीर्यरक्षा करने पर वीर्य का लाभ=बल और शक्ति की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति।—अ० ११।५।२४

ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेवाला ही तेजोमय ब्रह्म=परमेश्वर को धारण करता है, प्राप्त करता है।

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

—दक्षस्मृ० ७।३१, ३२

स्त्रियों का स्मरण करना, उनके गुणों का वर्णन करना, उनके साथ हास-क्रीड़ा [खेलना], उन्हें घूर-घूरकर देखना, उनके साथ

गुप्त वार्तालाप करना, उन्हें प्राप्त करने का संकल्प करना, उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना और उनके साथ सम्भोग—यह आठ प्रकार का मैथुन है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।

मृत्युव्याधिजरानाशी पीयूषं परमौषधम्।
ब्रह्मचर्यं महद्रत्नं सत्यमेव वदाम्यहम्॥

मैं सत्य कहता हूँ कि ब्रह्मचर्य एक अमूल्य रत्न है। ब्रह्मचर्य मृत्यु, रोग और बुढ़ापे को नष्ट करनेवाला है। यह अमृत है। यह महौषध है, सबसे श्रेष्ठ दवा है।

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
ऊर्ध्वरेता भवेद् यस्तु स देवो न तु मानुषः॥

शरीर के सुखाने को तप नहीं कहते, ब्रह्मचर्य ही सर्वश्रेष्ठ तप है। जो वीर्य को अपने वश में कर लेता है, वह मनुष्य नहीं है, देवता है।

समुद्रतरणे यद्वदुपायो नौ प्रकीर्तितः।
संसारतरणे तद्वत् ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम्॥

जैसे समुद्र के पार जाने के लिए नौका ही सर्वश्रेष्ठ साधन है, उसी प्रकार इस संसाररूपी समुद्र से पार उतरने के लिए, दुःखों से छूटने के लिए ब्रह्मचर्य ही सर्वश्रेष्ठ साधन है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र [१।३।१७-२४] में ब्रह्मचारी का शील इस प्रकार वर्णित किया गया है—

मृदुः ॥१७॥

ब्रह्मचारी कोमल और क्षमाशील हो।

शान्तः ॥१८॥

वह सदा शान्त रहे, इन्द्रियों को विषयों में जाने से रोके।

दान्तः ॥१९॥

वह मन को वश में रखनेवाला हो, अपने कर्तव्यपालन में सदा तत्पर रहे।

ह्रीमान् ॥२०॥

वह लज्जाशील हो ।

दृढधृतिः ॥२१॥

वह धैर्य अथवा आत्मसंयम से युक्त हो ।

अग्लाँस्नुः ॥२२॥

वह उत्साह-सम्पन्न हो ।

अक्रोधनः ॥२३॥

वह क्रोधरहित हो, किसी पर क्रोध न करे ।

अनसूयुः ॥२४॥

ब्रह्मचारी दूसरे के अभ्युदय=उन्नति को देखकर जलनेवाला न हो ।

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः ।—मुण्डको० ३।२।४

बलहीन=ब्रह्मचर्य से रहित मनुष्य आत्मा और परमात्मा का दर्शन नहीं कर सकता ।

बलमुपास्स्व ।—छान्दो० ७।८।१

बल की उपासना करो, बलवान् बनो ।

उत्तम शिक्षा

माता-पिता बच्चों को कैसी शिक्षा दें, इस विषय के कुछ मन्त्र, श्लोक आदि यहाँ दिये जा रहे हैं—

भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वप्नम् ।—यजु० ३०।१७

जागना, जागरूक=सावधान रहना ऐश्वर्य का कारण है, जागने से ऐश्वर्य प्राप्त होता है, सोना विनाश के लिए है, सोने से, असावधानी से दरिद्रता आती है ।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥

—ऋ० १०।१५१।५

हम प्रातःकाल अपने जीवन में श्रद्धा-भावना का आह्वान करते हैं। हम दोपहर में श्रद्धा को अपने जीवन में बुलाते हैं, हम सूर्यास्त=दिन छिपने के समय श्रद्धा को जीवन में धारण करते हैं। हे श्रद्धे ! तू हमारे जीवनों को श्रद्धा से ओत-प्रोत कर दे।

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति ॥

—ऐतरेय० ३३।३

बैठे हुए मनुष्य का भाग्य=सौभाग्य भी बैठा रहता है, खड़े हुए मनुष्य का भाग्य भी खड़ा हो जाता है, सोनेवाले का भाग्य भी सोया रहता है और चलनेवाले का सौभाग्य भी चल पड़ता है, अतः चलते रहो, निरन्तर बढ़े चलो।

कलिः श्यानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरंश्चरैवेति ॥

—ऐतरेय० ३३।३

सोये रहना जीवन का कलियुग है, निद्रा से उठकर जमुहाई लेना द्वापर है, उठकर खड़े हो जाना त्रेता है और श्रम=परिश्रम, पुरुषार्थ करना सत्ययुग है, अतः चलते रहो, चलते रहो।

न श्वः श्वमुपासीत। को हि मनुष्यस्य श्वो वेद।

—शत० २।१।३।६

"कल करूँगा, कल करूँगा"—ऐसी बात नहीं सोचनी चाहिए। मनुष्य के कल को कौन जानता है? कल तक जीवन रहेगा ही, इसका क्या निश्चय है?

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम् ॥

—महा० शा० १७५।१५

कल किये जानेवाले कार्य को आज ही कर डालना चाहिए और सायंकाल किये जानेवाले कार्य को प्रातःकाल ही कर लेना

चाहिए, क्योंकि मृत्यु यह नहीं देखती कि इसका कार्य पूरा हुआ है या नहीं।

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।

—तैत्तिरीय, शिक्षा० ११।१

तू सदा सत्य बोल, धर्म का आचरण कर और स्वाध्याय में कभी प्रमाद मत कर।

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥

—ऋ० ८।३३।१९

हे बाले! नीचे देख, ऊपर मत देख। अपने पैरों को संयत करके रख। तेरे गुप्ताङ्ग दिखाई न देने चाहिएँ, क्योंकि नारी मानव-समाज की निर्मात्री है।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया॥—मनु० ५।१५०

स्त्री को चाहिए कि सदा सुप्रसन्न रहे, घर के कार्यों में चतुर हो, घर के बर्तन आदि स्वच्छ एवं यथास्थान रक्खे और व्यय=खर्च करने में बहुत उदार न हो, बेकार धन खर्च न करे।

काकचेष्टो बको ध्यानी श्वाननिद्रो तथैव च।
अल्पहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पञ्चलक्षणः॥

कौआ जैसी चेष्टा, बगुले के समान ध्यान, कुत्ते के समान नींद लेना, थोड़ा खाना और विद्या-प्राप्ति के लिए घर छोड़ने के लिए भी तैयार रहना—ये विद्यार्थी के पाँच लक्षण हैं।

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः॥

—विदुरनी० ८।५

आलस्य [शरीर और बुद्धि में जड़ता], मद्य, गाँजा, भाँग आदि

का नशा करना, मोह [किसी वस्तु में फँसावट], चपलता, गप्प-बाजी [व्यर्थ की बातें करना], पढ़ते-पढ़ते रुक जाना, अभिमानी होना और त्यागी न होना—ये सात विद्यार्थियों के दोष माने गये हैं।

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ॥

—विदुरनी० ८।६

सुख चाहनेवाले को विद्या की प्राप्ति नहीं हो सकती और विद्या पढ़नेवाले को सुख नहीं मिल सकता, अतः सुख की इच्छा करनेवाले को विद्या छोड़ देनी चाहिए और विद्या के इच्छुक को विषय-सुख छोड़ देने चाहिएँ।

मूर्खस्य पञ्च चिह्नानि गर्वो दुर्वचनं तथा ।
हठी चैव विषादी च परोक्तं नैव मन्यते ॥

मूर्ख के पाँच चिह्न [निशानी, पहचान] होते हैं—१. वह अभिमानी होता है, २. वह कटु और कड़वा बोलता है, ३. वह हठी =दुराग्रही, ज़िद्दी होता है, ४. वह निराश, उत्साहहीन और आलसी होता है तथा ५. वह दूसरे की बात नहीं मानता।

तिष्ठन्न खादामि हसन्न जल्पे
गतं न शोच्यामि कृतं न मन्ये ।
द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्
कथमस्मि मूर्खो वद कारणेन ॥

राजन्! मैं खड़ा होकर खाता नहीं हूँ, वार्तालाप करते हुए हँसता नहीं हूँ, बीती हुई बात की चिन्ता नहीं करता, किसी के प्रति किये हुए उपकार को गाता नहीं फिरता, जहाँ दो व्यक्ति परस्पर वार्तालाप कर रहे हों उनमें तीसरा होकर पञ्च नहीं बनता, फिर आपने मुझे मूर्ख क्यों कहा?

विशेष—इस श्लोक में भी मूर्खों के पाँच चिह्न बताये हैं—१. खड़े होकर खाना, २. बातचीत करते हुए हँसना, ३. बीती बात पर दुःखी होना, ४. उपकार करके कहते फिरना और ५. जहाँ दो व्यक्ति बात कर रहे हों, वहाँ बिना बुलाये उनके बीच में जाना।

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्याऽऽत्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

—पं० मदनमोहनजी मालवीय

सत्य बोलने, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने, व्यायाम करने, विद्या प्राप्त करने और देशभक्ति के लिए आत्मबलिदान के द्वारा सदा सम्मान के योग्य बनो।

मूकः परापवादे परदारनिरीक्षणेऽप्यन्धः।
पंगुपरधनहरणे स जयति लोकत्रये पुरुषः॥

जो दूसरों की चुगली करने में गूँगा हो, जो परस्त्रियों को देखने के विषय में अन्धा हो और दूसरों का धन चुराने के विषय में लंगड़ा हो—ऐसा मनुष्य तीनों लोकों में श्रेष्ठ माना जाता है।

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्क्रुद्धमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दोऽनुवृत्तेन याथातथ्येन पण्डितम्॥

—चाणक्यनी० ६।११

लोभी मनुष्य को धन देकर अपने वश में करना चाहिए, क्रोधी को हाथ जोड़कर वश में करना चाहिए, मूर्खों को हाँ-में-हाँ मिलाकर वश में करना चाहिए और पण्डितों को यथार्थ स्थिति, सत्य बात बताकर वश में करना चाहिए।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति॥

जो परस्त्रियों को माता के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान और गाय, घोड़ा आदि सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखता है, वस्तुतः वही ठीक-ठीक देखता है।

परस्त्री मातेव क्वचिदपि न लोभः परधने
न मर्यादाभङ्गः क्वचिदपि न नीचेष्वभिरतिः ।
रिपौ शौर्यं धैर्यं विपदि विनयः सम्पदि सदा
इदं वच्मि भ्रातर्भरत नियतं ज्ञास्यसि मुदे ॥

[श्रीराम उपदेश देते हैं—] हे भाई भरत ! पर-स्त्री को माता के समान समझना, दूसरे के धन का लोभ कभी मत करना, कभी मर्यादा का भङ्ग मत करना, नीचों की सङ्गति में कभी प्रेम मत करना, शत्रु के प्रति शूरता प्रदर्शित करना, विपत्ति में धैर्य रखना और सम्पत्ति में विनीत रहना—ये सब प्रसन्नता के निश्चित हेतु हैं, ऐसा जानो ।

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः ।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ॥

जिनका मुख प्रसन्नता का सदन=घर है, जिनका हृदय दया से पूरित=भरा हुआ है, जिनकी वाणी से अमृत टपकता है, जो सदा परोपकार में लगे रहते हैं, ऐसे महानुभाव किसके वन्दनीय नहीं होते ? अर्थात् सभी के पूजनीय होते हैं ।

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम् ।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥—विदु० १।६५

दो आदमियों को गले में बहुत बड़ा पत्थर बाँधकर समुद्र में डुबो देना चाहिए । किन-किन को ? धनी होकर दान न देनेवाले को और दरिद्र होकर परिश्रम न करनेवाले को ।

युवैव धर्मशीलः स्यात् ।—महा० शा० १७५।१६

यौवन-अवस्था में, जवानी में ही धर्म का आचरण करना चाहिए ।

आयुषः क्षण एकोऽपि सर्वरत्नैर्न लभ्यते ।
नीयते तद् वृथा येन प्रमादः सुमहानहो ॥

—यो० वा० ६ उ० १७५।७८

आयु का एक क्षण भी संसार के सब रत्न देने पर भी नहीं मिल सकता। ऐसे बहुमूल्य जीवन को जो व्यर्थ खोता है, तो अहो! यह बड़ा भारी प्रमाद है।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धः स्वयमेव सम्पदः॥

—किरात० २।३०

किसी कार्य को बिना सोचे-विचारे तुरन्त नहीं कर डालना चाहिए, क्योंकि अविवेक [बिना सोचे-विचारे कार्य करना] विपत्तियों, दुःखों का कारण है। विचारशील मनुष्य को गुणों से प्रेम करनेवाली सम्पत्तियाँ स्वयं चुन लेती हैं।

मृषा वदति लोकोऽयं ताम्बूलं मुखभूषणम्।
मुखस्य भूषणं पुंसः स्यादेकैव सरस्वती॥

लोग झूठ ही बोलते हैं जब वे कहते हैं कि पान मुख का भूषण है। पुरुष के मुख का भूषण तो एक ही है—सरस्वती=विद्या।

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥

सैकड़ों मनुष्यों में एक शूरवीर पैदा होता है, हजारों में एक पण्डित=विद्वान् उत्पन्न होता है, दस सहस्र में एक वक्ता पैदा होता है परन्तु दानी लाखों में कोई एक होता है, अथवा लाखों में भी नहीं होता।

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत्॥

सौ कार्यों को छोड़कर भोजन करना चाहिए, हजारों कामों को छोड़कर स्नान करना चाहिए, लाखों कार्यों को छोड़कर दान देना चाहिए और करोड़ों कार्यों को छोड़कर प्रभु-भक्ति करनी चाहिए।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥

—विदुरनी० १।८३

ऐश्वर्य चाहनेवाले मनुष्य को इस संसार में निम्न छह दोष छोड़ देने चाहिएँ—१. बहुत अधिक सोना, २. ऊँघते रहना, ३. भयभीत होना, ४. क्रोध करना, ५. आलस्य और ६. कार्यों को विलम्ब से करना, एक घण्टे के कार्य में चार घण्टे लगाना।

दीर्घसूत्री विनश्यति।

दीर्घसूत्री=कार्यों को बहुत धीरे-धीरे करनेवाला नष्ट हो जाता है।

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥—हितोप० मित्र० ७१

"यह मेरा है और यह पराया=दूसरे का है"—ऐसा छोटे दिलवाले सोचते हैं; जो महापुरुष हैं, वे तो समस्त संसार को ही अपना घर समझते हैं।

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था
सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र!
न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा॥

—हितो० सन्धिः ९३

आत्मा नदी है, संयम ही पुण्य तीर्थस्थान है। इस आत्मारूपी नदी में सत्य ही जल है, शील इसके किनारे हैं और दयारूपी तरंगें=लहरें हैं। हे युधिष्ठिर! इस आत्मारूपी नदी में स्नान करो, इसमें स्नान करने से अन्तरात्मा पवित्र होगा। आत्मा जल से पवित्र नहीं होता।

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थमार्जवमेव च॥

दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते ।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परः ॥
न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते ।
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः ॥

—स्कन्द० पु० का० पू० ६।३०-३३

सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियों को वश में करना तीर्थ है। सब प्राणियों पर दया करना तीर्थ है, सरलता तीर्थ है। दान, दम=मन को वश में करना और सन्तोष ये भी तीर्थ हैं। ब्रह्मचर्य का पालन करना उत्तम तीर्थ है। प्रिय और मधुर वचन बोलना भी तीर्थ है। ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है और तप=भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी, हानि-लाभ को सहन करना भी तीर्थ है। तीर्थों में भी सबसे बड़ा तीर्थ अन्तःकरण की अत्यन्त शुद्धि है। पानी में शरीर को डुबो लेना स्नान नहीं कहलाता; जिसने 'दम'-तीर्थ में स्नान किया है, मन और इन्द्रियों को संयम में रक्खा है, उसी ने वास्तविक स्नान किया है। जिसने मन की मैल धो डाली है, वही शुद्ध और पवित्र है।

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् ।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥

—चाणक्यनी० १४।२०

दुर्जनों का सङ्ग=मेल-जोल छोड़ो, सज्जनों का समागम=सत्सङ्ग करो, दिन-रात पुण्य करो, शुभ कर्म करो और संसार की अनित्यता का स्मरण रक्खो!

धर्मं चरत माऽधर्मं सत्यं वदत माऽनृतम् ।
दीर्घं पश्यत मा ह्रस्वं परं पश्यत माऽपरम् ॥

धर्म का आचरण करो, अधर्म का नहीं। सत्य बोलो, असत्य

नहीं। दूर तक देखो, समीप में नहीं। परमतत्त्व को देखो, छोटी चीजों को नहीं।

हस्तस्य भूषणं दानं सत्यं कण्ठस्य भूषणम्।
श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रं भूषणे किं प्रयोजनम्॥

हाथ का आभूषण है दान, कण्ठ का आभूषण है सत्य-भाषण, श्रोत्र का आभूषण है शास्त्रों का सुनना—ये आभूषण यदि मनुष्य के पास हों, तो फिर अन्य आभूषणों की क्या आवश्यकता है?

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

—भर्तृ० नी० ५६

विपत्ति में धैर्य, उन्नति में क्षमाशीलता, सभा में वचन-चातुर्य, युद्ध में पराक्रम, यश के प्रति उदासीनता और शास्त्रों के अध्ययन का व्यसन—ये महापुरुषों के स्वाभाविक गुण हैं।

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत्॥

धन का नष्ट हो जाना, मन का दुःख, घर का दुराचार, अपनी ठगाई और अपमान को बुद्धिमान् कभी भी दूसरे के सामने प्रकट न करे।

यो यमर्थं प्रार्थयते तदर्थं घटतेऽपि च।
अवश्यं तदवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्तते॥

जो मनुष्य जिस वस्तु को प्राप्त करना चाहता है और उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न भी करता है, हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाता है, यदि थककर न बैठ जाए तो वह उसे अवश्य प्राप्त करता है।

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययागमौ ।
को वाऽहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥

—चाणक्यनी० ४।१८

कैसा समय है, मेरे मित्र कौन-कौन हैं, देश=स्थान कौन-सा है, आय और व्यय [आमदनी और खर्च] का अनुपात कितना है, मैं कौन हूँ और मेरी शक्ति क्या है, बुद्धिमान् को चाहिए कि इन बातों पर बार-बार विचार करे।

एकोऽहमसहायोऽहं कृशोऽहमपरिच्छदः ।
स्वप्नेऽप्येवंविधा चिन्ता मृगेन्द्रस्य न जायते ॥

मैं अकेला हूँ, मैं सहायकों से रहित हूँ, मैं दुर्बल हूँ, मैं परिवार-रहित हूँ—सिंह को स्वप्न में भी ऐसी चिन्ता नहीं होती।

अभिमानं सुरापानं गौरवं रौरवं ध्रुवम् ।
प्रतिष्ठा शूकरीविष्ठा त्रयं त्यक्त्वा हरिं भजेत् ॥

अभिमान को सुरा=मद्य, शराब के समान, गौरव को रौरव नरक के समान और प्रतिष्ठा=मान-सम्मान को सुअर की विष्ठा=मल, टट्टी के समान जानकर त्याग देना चाहिए और परमात्मा का भजन करना चाहिए।

निद्रान्ते भगवतः स्मरणं, प्रातः देवानामर्चनं, साधुपुरुषेभ्यः प्रणामः, प्रमादेभ्यो विरामः, सर्वस्य-उपकारः, शुचिः व्यवहारः, सत्पात्रदाने रतिः, इत्येव सत्पुरुषाणां स्थितः ॥ —वर्णकसमुच्चय

निद्रा के अन्त में परमेश्वर का स्मरण और प्रातःकाल देवों=माता-पिता, वृद्धों का पूजन=आदर-सत्कार, साधु=श्रेष्ठ पुरुषों को प्रणाम और प्रमादों से विराम, सबका उपकार, पवित्र व्यवहार, सत्पात्रों को दान देने में रति=प्रेम और धर्मकार्यों में मति—यही सज्जनों, भले आदमियों का व्यवहार है।

स कमलेन आतपत्रं करोति, चन्दनेन लाङ्गलं करोति, सुवर्णेन कुशं करोति, रत्नेन काकोड्डयनं करोति, अमृतेन पादशौचं करोति,

गजेन इन्धनाहरणं करोति, कस्तूरिकया मसिं करोति, गवा कर्षणं करोति, पट्टदुकूलेन गड्डबन्धनं करोति, यः शरीरेण मुक्ति न साधयति ॥

—कर्णकसमुच्चय

जो अमूल्य मानव-देह को पाकर भी मुक्ति की साधना नहीं करता, वह कमल-पुष्प से छाता बनाता है, चन्दन से हल बनाता है, सोने से कुश बनाता है, रत्नों से कौओं को उड़ाता है, अमृत से पैर धोता है, हाथी पर जलाने की लकड़ियाँ लादकर लाता है, कस्तूरी से स्याही बनाता है, गाय से खेत की जुताई करता है और रेशमी दुपट्टे से घाव बाँधता है।

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

—भर्तृ० नी० १२

जिनके पास विद्या नहीं है, जो तपस्वी नहीं हैं, जो दानी नहीं है, जिनके पास न ज्ञान है, न शील है, न उत्तम गुण हैं और न धर्म है, वे संसार में पृथिवी पर भार बनकर मनुष्य के रूप में पशु ही हैं।

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ॥

—चाणक्यनी० १२।१०

सत्य माता, ज्ञान पिता, धर्म भाई, दया मित्र, शान्ति पत्नी और क्षमा पुत्र—ये छह मेरे बन्धु हैं।

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥

—विदुर० नी० १।३[illegible]

जो शास्त्रों को न पढ़-सुनकर गर्वित हो विद्या की डींग मारे, जो दरिद्र होकर भी बड़े-बड़े मनोरथ बांधे, जो बिना कर्म किये पदार्थों को प्राप्त करना चाहे—ऐसा मनुष्य बुद्धिमानों द्वारा मूर्ख और नीच कहा गया है।

□□□

सम्पर्क -

9029421718 - मुरवाडे

हमारे अन्य प्रकाशन

याज्ञिक-आचार-संहिता २०.[illegible]०

पं० श्री वीरसेनजी वेदश्रमी वेदविज्ञानाचार्य

बाल-शिक्षा २.५०

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

पञ्चयज्ञप्रदीपिका (छप रही है) ८.[illegible]०

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सन्ध्या-यज्ञ आदि के प्रत्येक मन्त्र का अर्थ

सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द, दो रंगी छपाई